(मुखरित रेखाकृतियां)
विषय वस्तु :—श्रीवीर प्रभु की जीवन-दर्शन —
हीयमान से वर्द्धमान पर्यन्त।

सम्पादक एवं लेखक —
पं० श्री कमल कुमार जी शास्त्री "कुमुद"
कवि श्री फूलचन्द जी "पुष्पेन्दु"
खुरई (जिला-सागर) म० प्र०

परामर्श दातृ-मंडल—
श्री ब्र० माणिकचन्द जी चवरे कारंजा
पं श्री जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी जबलपुर म० प्र०
पं श्री हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री ब्यावर (राजस्थान)
श्री डा० शेखरचन्द्र जैन व्याख्याता भावनगर (गुजरात)
पं० श्री नेमिचन्द्र जी जैन प्राचार्य गुरुकुल खुरई (सागर) म० प्र०

चित्र-शिल्पी —
श्री रामप्रसाद जी देहली
श्री दुर्गादीन जी बागी एडवोकेट } खुरई (सागर) म० प्र०
श्री रमेश सोनी मधुकर }

प्रकाशक —
भीकमसेन रतनलाल जैन
१२८६ वकीलपुरा देहली ११०००६

मुद्रा मूल्य दस रुपया : युग मूल्य पच्चीस सौ वर्ष
धकार सम्पादक द्वय के अधीन प्र० सं० २२००

: जे. पी. प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली-३२

भ० महावीर के २५०० वें निर्वाण वर्ष के संदर्भ

में

संसार

के

समस्त अहिंसा-अनुयायियों

को

सादर समर्पित

अहोभाग्य

[illegible] धन्य [illegible]

वह मात धन्य—

वह क्षेत्र धन्य—

कुल गोत्र धन्य ।

वह घड़ी धन्य—

वह धर्म धन्य—

वह तन मन—

लोचन श्रोत्र धन्य ।

जो सन्निमित्त—

वनकर खुद को—

युग-युग तक—

अमर वनाते हैं।

वे वर्द्धमान से—

अनु प्राणित—

उनकी ही—

गाथा गाते हैं ॥

सन्मति शरणं पव्वज्जामि

धम्मं शरणं पव्वज्जामि

जिन्होंने

महामोह पर विजय प्राप्त की

उन महावीर प्रभु की शरण को प्राप्त होता हूँ।

जिन्होंने

कैवल्य रश्मियों से

सारा लोक ज्ञानालोक से भर दिया

उन सन्मति श्री की शरण को प्राप्त होता हूँ।

अर्हत्केवली

भगवान वर्द्धमान द्वारा प्ररूपित

वीतराग धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

गणधर इन्द्रों ने भी जिनकी महिमा नहीं सर्वथा आँकी।
जिनकी स्तुति करते-करते शक्ति थकी जिनवाणी माँ की॥
मैं अल्पज्ञ भला क्या जानूँ ? महावीर सर्वज्ञ जानते—
कैसे उनके जीवन दर्शन की खींची है मैंने झाँकी॥

मंगल स्तुति

रचयित्री : विदुषीरत्न पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

जिनने तीन लोक त्रैकालिक सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी युगपत सवको जान लिया॥
रागद्वेष जर मरण भयावह नहिं जिनका संस्पर्श करें।
अक्षय सुख पथ के वे नेता, जग में मंगल सदा करें॥१॥

चन्द्र किरण चन्दन गंगाजल से भी शीतल वाणी।
जन्म मरण भय रोग निवारण करने में है कुशलानी॥
सप्तभंग युत स्याद्वाद मय, गंगा जगत पवित्र करे।
सवकी पाप धूली को धोकर, जग में मंगल नित्य करे॥२॥

विषय वासना रहित निरंवर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवों को अभय दान दे निर्भय पद को प्राप्त किया।
भव समुद्र में पतित जनों को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मय हृदय विराजो सव जन को मंगल दाता॥३॥

अनंत भव के अगणित दुःख से जो जन का उद्धार करे।
इन्द्रिय सुख देकर, शिव सुख में ले जाकर जो शीघ्र धरे॥
धर्म वही है तीन रत्नमय त्रिभुवन की सम्पति देवे।
उसके आश्रय से सव जन को भव-भव से मंगल होवे॥४॥

श्री गुरु का उपदेश श्रवण कर नित्य हृदय में धारें हम।
क्रोध मान मायादिक तज कर विद्या का फल पावें हम॥
सवसे मैत्री, दया, क्षमा हो सवसे वत्सल भाव रहे।
सम्यक् 'ज्ञानमती' प्रगटित हो सकल अमंगल दूर रहे॥५॥

महामंगलमय महावीर

सिद्धिप्रदं महावीरं, संसारार्णवपारगं ।
सन्मतिं शिरसावन्दे, नित्यं सन्मतिसिद्धये ॥

× × ×

वीरः सर्व सुरासुरेन्द्र महितो वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्तया नमः ॥
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्त मतुलं वीरस्य वीरं तपो ।
वीरे श्री द्युतिकांतिकीर्ति धृतयो हे वीर ! भद्रंत्वयि ॥

× × ×

नमोस्तु तुमको सकल लोक के चूड़ामणि हे परमात्मन् !
नमोस्तु तुमको वीर! धीर! महावीर प्रभो! त्रिशलानंदन!
नमस्तु तुमको जिनपुंगव! जिनवर्द्धमान! हे प्रभु अतिवीर!
नमस्तु तुमको हे सन्मति प्रभु! मुझको सन्मति दो महावीर॥

चित्र-शतक के प्रकाशक
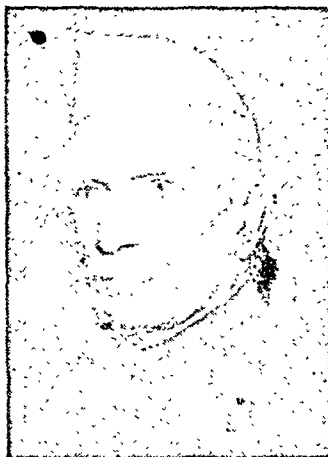
उदारमना—

बाबू रतनलाल जी जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली-११०००६

जैन साहित्य प्रकाशन की तीव्र अभिरुचि रखने वाले उदारमना वयोवृद्ध बाबू श्री रतनलाल जी जैन कालका वाले सम्प्रति १२८६ वकीलपुरा देहली के निवासी हैं। लगभग ४० वर्षों से आप मुझ से सुपरिचित हैं और मेरी लेखनी पर इतने अधिक विमुग्ध है कि मेरे विशाल काय ग्रन्थों का प्रकाशन आपने निःस्वार्थ भाव से किया है तथा भविष्य में करने को अत्यन्त लालायित हैं।

वज्राङ्गवली हनुमान चरित्र, भक्तामर महाकाव्य, महावीर

सन्देश, महावीर श्री चित्र-शतक तथा प्रकाश्य मान सचित्र भक्ताभर महाकाव्य (पृष्ठ लगभग ७५०) आदि ग्रन्थ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

श्री जिनवाणी सरस्वती मंदिर के इस धर्म-प्राण पुजारी में समर्पण का गहराभाव है। सर्विस मात्र ही आपकी आजीविका का एक मात्र साधन होने पर भी आप उन्मुक्त हृदय से अपने न्यायोपार्जित धन का सही सदुपयोग श्री जिनवाणी माता के प्रसार-प्रचार में ही सदा-सर्वदा करते रहते हैं परन्तु इस साहित्य-सेवा को आप आय का साधन नहीं वनाते। प्रस्तुत ग्रन्थ "महावीर श्री चित्र शतक" को समस्त जैन मन्दिरों शिक्षा संस्थाओं एवं जैन पुस्तकालयों को विना मूल्य देने का उनका निर्णय दूसरों के लिए एक उदाहरण है। आपके वहिरंग व्यक्तित्व में जितना सादापन है, उतनी ही सरलता एवं गंभीरता आपके अंतरंग में है। आत्मन्ह्विता आपका विशिष्ट गुण है। खादी का सादा लिवास आपकी देशभक्ति को प्रकट करता है।

कमलकुमार जैन शास्त्री "कुमुद"
सम्पादक महावीर श्री चित्र-शतक

गौरवं प्राप्यते दानात् न तु वित्तस्य संचयात्।
उच्चैरिस्थिति पयोदानां, पयोधीनामधः स्थिति ॥

ऊँचा सदा उठा है, छोड़ने वाला।
नीचे सदा गिरा है, जोड़ने वाला ॥

देखलो वादल गगन का वन गया साथी।
पर समुन्दर सर जमीं पर फोड़ने वाला ॥

चित्र-शतक के सम्पादक

पं श्री कमलकुमारजी शास्त्री 'कुमुद'

व्यवस्थापक
श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

आप ही हैं जैन जगत के वहुचर्चित सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् एवं कलाकार, जिनकी सतत साधना ने स्थानीय प्रकाशन संस्था श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय-सदन की छत्रच्छाया में अब तक अर्द्ध-शतक ग्रंथों का लेखन एवं सम्पादन करके जैन वाङ्मय का भंडार भरा है। ६५ वर्षीय प्रौढ़ होने पर भी जिनमें युवाओं सदृश्य उन्मेष, कर्मठता एवं जीवन्त क्रान्ति विद्यमान है।

चित्र-शतक के सम्पादक

कवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'

अध्यापक श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल
खुरई (सागर) म० प्र०

जिनके व्यक्तित्व में गौणता की मुख्यता है। सामान्य की विशेषता है, व्याकरण में जिसे भाव वाचक संज्ञा, निज वाचक सर्वनाम और अकर्मक क्रिया कहते हैं वे हैं श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु'। श्री पं० कमलकुमर शास्त्री 'कुमुद' के अनन्य सहयोगी। स्व० व्रती श्री वाल चन्द जी के ४९ वर्षीय वरिष्ठ पुत्र।

चित्र-शतक के चित्र-शिल्पी

श्री दुर्गादीन जी श्रीवास्तव एडवोकेट "वागी"

प्रख्यात चित्रकार एवं सुमधुर गीतकार
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

श्री वागी जी खुरई के विख्यात एडवोकेट हैं। चित्रकला आप पर तन-मन से मुग्ध है और हाथ धोकर इनके पीछे पड़ी है परन्तु आप हैं कि उसे तलाक दिये फिर रहे हैं। वागी जो ठहरे!

आज कल आप कविताओं का वाग लगाते हैं और वगावत की पैरवी करते हैं।

चित्र-शतक के चित्र-शिल्पी

श्री रमेश सोनी 'मधुकर'
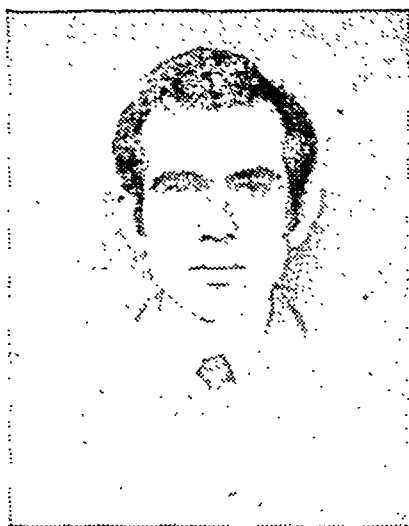
सिद्धहस्त चित्रकार एवं सुमधुर गीतकार
खुरई (सागर) म० प्र०

श्री मधुकर जी निरन्तर अपनी तूलिका एवं लेखनी द्वारा जिनवाणी माता का शृंगार करने में सदा दत्तचित्त रहा करते हैं।

आकाशवाणी केन्द्रों द्वारा आप की स्वरचित 'ज्योतिर्मय महावीर' (गीत-काव्य) रचना प्रसारित होने योग्य है।

चित्र-शतक का परामर्श दातृमंडल

ब्रह्मचारी श्री मानकचंद जी चवरे
न्यायतीर्थ, कारंजा (महाराष्ट्र)

भारतीय जैन गुरुकुलों के प्रणेता
१०८ मुनि श्री समन्तभद्र जी
महाराज के
अनन्य शिष्य, एवं गुरुकुलों के
अधिष्ठाता

पं० श्री जगमोहन लाल जी शास्त्री
कटनी (जबलपुर) म० प्र०

जैन सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याता
अनुभवी एवं चरित्रनिष्ठ
उच्चकोटि के प्रखर विद्वान्

श्री डा० शेखरचंद जी जैन
एम.ए.पी.एच.डी. साहित्यरत्न
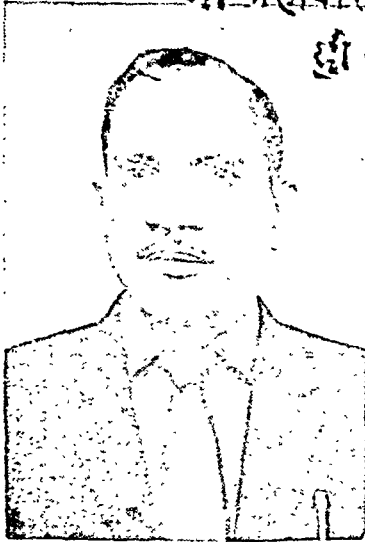
आर्टस् एण्ड कामर्स कालेज
भावनगर (गुजरात) में
हिन्दी के विभागाध्यक्ष,
अहिन्दी भाषी प्रदेश में
हिन्दी के प्रचारक एवं
उद्भट् विद्वान

पं श्री नेमिचन्द जी जैन शास्त्री
एम.ए (द्वय) बी-एड साहित्याचार्य

प्राचार्य श्री पार्श्वनाथ दि० जैन
गुरुकुल हायर सेकेण्ड्री स्कूल
खुरई (जिला सागर) म० प्र०
पी० एच० डी० के शोधात्मक एवं
कर्मठ विद्वान

पं श्री हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्री
ब्यावर (राजस्थान)
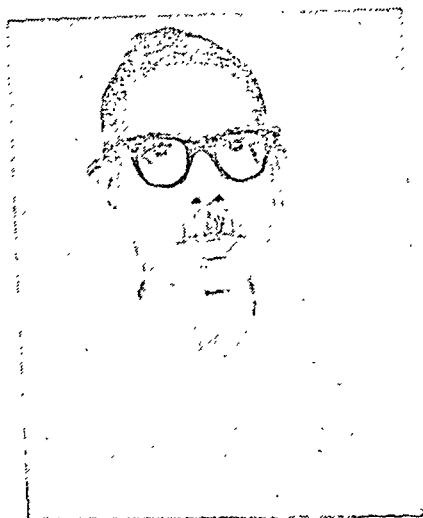
जैन वाङ्मय एवं समाज के अनन्य सेवक
षट्खण्डागम के सुयोग्य सम्पादक

आभार

उपरोक्त परामर्शदातृ विद्वान् मंडली ने प्रस्तुत ग्रन्थ निर्माण के पूर्व एवं पश्चात् समय-समय पर उचित निर्देशन एवं संशोधन प्रदान कर इसे निर्दोष बनाने में जो योग-दान दिया है उसके प्रति श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय सदन (संस्था) अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है।

—व्यवस्थापक

पृष्ठ निर्देशन (अ)

—०—

निवेदन के पृष्ठ

मानवता का चरमोत्कर्ष, पौरुष की सुष्ठु पराकाष्ठा, व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति अथवा चैतन्य आत्मा के स्वरूप का अन्तिम निखार जव अलौकिकता के सूक्ष्मतम केन्द्र-विन्दु पर पहुँच कर परमात्मा का रूप धारण कर लेता है तव तीनों लोकों के जीव मात्र उस कृतकृत्य सत्व के पादार-विन्दों में आत्म समर्पण करने के लिये लालायित हो उठते हैं। तथा कथित दिव्य ऐश्वर्य—वैभव—विभूतियाँ ही नहीं, वल्कि उत्कृष्ट से उत्कृष्ट माहात्म्य भी हतप्रभ होकर ऐसे चिच्चमत्कारमयी समयसार से आलोक की याचना करता है। केवल आत्मा और परमात्मा की सुदृढ़ भूमिका पर ही आधारित यह सम्पूर्ण जैन-शासन (आत्म-धर्म) रत्नत्रय मण्डित इन चैतन्य-सर्वज्ञ-कर्मण्य वीतरागी महाश्रमणों को 'अरिहंत' नाम की महा मंगलमयी संज्ञा से सम्वोधित करके अपने को धन्य मानता है। परम पूज्य पंच परमेष्ठी के आदि पद पर प्रतिष्ठित ये अनादि सनातन पुरुष प्राणिमात्र के कल्याण के लिये अहिंसा, प्रेम, विश्व—वन्धुत्व, सर्वोदय और वीतरागता परक व्यावहारिक उपदेश तथा पर से सर्वथा निरपेक्ष स्वाभाविक स्वावलम्वन परक निश्चय धर्म का उपदेश स्वयं "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्य" के ज्वलंत और जीवित आदर्श प्रतीक वनकर देते हैं। नहीं-नहीं, भव्य जीवों के परम सौभाग्य से ही इन युगात्माओं के द्वारा सर्वाङ्गमुखी, निरक्षरी, अनेकान्ता वाग्गंगा दिव्यध्वनि के कलकल निनाद पूर्वक प्रवाहित होती रहती है, जिसमें विवेकी जन-हंस अद्यापि किलोलें करते हुए स्वपर कल्याणकारी मुक्ति पंथ पर गमन करते हैं।

समवशरणादिक लौकिक विभूतियों से सम्पन्न एवं अनन्त चतुष्टयादिक अनंन अलौकिक गुणों से मंडित तीर्थंकर नाम कर्म की सर्वोत्कृष्ट पुण्यतम प्रकृति की यह साकार मानवता जिन अरिहंत विशेषों ने अपने अपूर्व पुरुषार्थ से अर्जित की है— वे युग पुरुष कहलाते हैं। जो यथावस्थित चराचर लोक के मात्र वीतराग ज्ञाता दृष्टा होकर आत्मानुशासित जैन-शासन की अनादि निधन प्रवहमान युगान्तरकारी ध्रौव्यधुरी के रूप में सदा-सर्वदा वंदनीय रहते हैं।

तीर्थङ्कर भगवान वर्द्धमान-महावीर इस कल्प-काल के एक ऐसे ही युग पुरुष महामानव थे जिनका तीर्थङ्करीय शासन चक्र अब भी भरत क्षेत्र में अढ़ाई हजार वर्ष से निरन्तर प्रवर्त्तमान है। इस पंचम कलिकाल के जीवों के लिये उनकी निश्चय व्यवहार परक मुख्य गौण अनेकान्त वाणी जितनी आवश्यक और हितावह आज है, उतनी कदाचित् ही कभी रही है। महाश्रमण महावीर स्वामी आज भले ही अरिहंत अवस्था में साकार रूप से होकर हमारे नयन पथगामी आदर्श न हों (निराकार-निरंजन सिद्धत्व अवस्था में विराजमान हों) तो भी उनका वाङ्मय शरीर परम पूज्य गणधराचार्यों के सूत्र ग्रन्थों में ग्रथित किया हुआ अब भी सुरक्षित है। आज आवश्यकता है उनके भले प्रकार पारायण की।

सर्वज्ञ भगवान महावीर की वह ओंकारमयी दिव्य ध्वनि उन पूज्यपाद गणधरों ने यद्यपि द्वादशाङ्ग श्रुत में गूँथी थी परन्तु काल-प्रवाह ने उसकी व्युच्छित्ती करके हमें विविध शास्त्राभासों के गहन कानन में अकेला छोड़ दिया है। फिर भी आचार्य कुंद-कुंदादि की असीम अनुकम्पा से वीर-शासन के अक्षुण्ण मूल-सूत्र हमारे हाथ में हैं और प्रशस्त मोक्ष मार्ग हमें अभी भी सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है।

आज भौतिकता के घने काले वादलों ने आध्यात्मिकता के सूर्य को ढंक कर समस्त भूमण्डल को नास्तिकता के वातावरण से भर दिया है। अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार, असत् अधर्म का दुःशासन धर्म की सहिष्णुछाती पर निरन्तर मूंग दल रहा है। ऐसे ही युग में २५०० सौ वर्ष वाद यदि परि निर्वाणोत्सव विश्व व्यापी धूमधाम लेकर आ ही रहा है तो हर अन्तरात्मा की आवाज है कि यह वर्ष आध्यात्मिक सत्क्रान्ति की ऐसी तूफानी लहरें छोड़े कि वर्तमान और भावी पीढ़ी का युगों पुराना पाप-पंक एक ही वार में प्रक्षालित हो जावे।

आज शासन प्रभावना की अपेक्षा युगीन क्रान्ति का महत्व अधिक है। हमें स्मरण है कि विगत दिनों स्वतन्त्र भारत ने केन्द्रीय शासन के संवल पर वुद्ध महा—परिनिर्वाणोत्सव भी अन्तर्राष्ट्रीय धूमधाम से सम्पन्न किया था। उसके परिणाम की धूमिल स्मृति भी आज निःशेष हो गई है। भय है कि कहीं यही हाल पच्चीस सौवें वीर परि निर्वाणोत्सव का न हो। यद्यपि संघ एवं राज्य सरकारें और जैन समाज के विविध सम्प्रदाय विभिन्न स्मारकीय परियोजनाओं द्वारा भगवान महावीर के अमर गीत गा रहे हैं, परन्तु उन गीतों में अपने प्राण घोलने वालों का आज भी अभाव है। इस वीर परि निर्वाणोत्सव की सार्थकता तो आध्यात्मिक युगीन सत्क्रान्ति से ही संभव है।

विविध वृहत् योजनाओं की इस भूमिका में साहित्य प्रकाशन योजनाएँ भी वड़े पैमाने पर अपना योग दान दे रही हैं। यह एक ऐसा सरल रचनात्मक कार्य है जिसकी इति श्री लेखन और प्रकाशन पर ही सुगमता से हो जाती है। आगे वाचन-पठन-मनन उनका होता है या नहीं इसकी कोई चिन्ता की ही नहीं जाती और न तद्विषयक योजनाएँ भी वनाई जातीं। असली रचनात्मक कार्य तो जीवन-निर्माण है—इसे कौन समझावे ?

आज का जन-जीवन अध्यवसाय के लिये इतना व्यस्त और व्यग्र एवं अध्यवसायी सा दिखाई दे रहा है कि स्वाध्याय की तो वात दूर, ग्रन्थों के पन्ने पलटना भी उसे मँहगा पड़ता है। आकर्षणों पर मुग्ध सौन्दर्य पिपासु नयनों को तो चित्रकला ही ज्ञान चेतना की जागृति का सर्वोत्कृष्ट माध्यम हो सकती है। शिक्षित और अशिक्षित, बुद्धिजीवी और श्रमजीवी दोनों के लिये ही चित्र-लिपि एक ऐसा मौन मुखर काव्य है जो केवल दर्शन मात्र से ही पूरा का पूरा पढ़ लिया जाता है। मूर्ति दर्शन क्या है ? सहज ही शीघ्रता से पढ़ा जाने वाला वह दर्शन काव्य जो चित्र लिपि में लिखा गया है। यही कारण है कि जगत में चित्रों और मूर्तियों की सार्वभौमिकता अपेक्षा कृत अधिक प्रशस्त है।

इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर हमने सर्व साधारण को भगवान महावीर के आमूल चूल जीवन वृत्त से परिचित कराने के लिये उनका यह चित्रमय इतिहास अंकित करने का दुस्साहस किया है। हो सकता है इसके पूर्व भी अनेकों प्रयास हुए हों—समानान्तर स्तर पर अभी हो रहे हों, परन्तु अपनी मौलिकता के प्रमाण स्वरूप इतना कहना ही पर्याप्त है कि हमने इसमें उन सभी चित्रों का संकलन किया है जो भगवान महावीर स्वामी की अतीत कालीन पर्यायों से सम्वद्ध हैं। शास्त्राधार पूर्वक वनाये गये ये कल्पना चित्र इतिहास की वेजोड़ झाँकियाँ हैं। अन्तिम भव सम्वन्धी महावीर श्री के जीवन चित्र अवश्य ही विपुलता से प्राप्त होते हैं, उनकी श्रृङ्खला में भी हमने यथा संभव वृद्धि करने का प्रयास किया है। ध्वज प्रतीकादिक के वे सभी चित्र जो अखिल भारतीय निर्वाणोत्सव महा समिति ने निर्धारित एवं प्रचारित किये हैं इसमें समाविष्ट करने का प्रयत्न भी हमने किया है। चित्रों का भावांकन इतना सुस्पष्ट हुआ है कि उनकी मूक मौन मुद्रा को भंग करने का साहस ही नहीं

होता, परन्तु इस मुखर युग में मौन का मूल्य ही क्या ? इस-लिये चित्रों को वाणी देने के लिये हमने तत्संबंधी संक्षिप्त पद्य रचना द्वारा भी उन्हें अलंकृत किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'महावीर श्री चित्र-शतक' में दो खण्ड हैं। एक तो चित्र काव्य खण्ड और दूसरा पद्य काव्य खण्ड। इतने में ही उनके समूचे जीवन दर्शन के गूँथने का प्रयास किया गया है।

यह ग्रन्थ चित्र संकलन अथवा अलवम मात्र नहीं है वल्कि पुराण एवं इतिहास की कोटि में रखा जाने योग्य एक स्मृति ग्रन्थ है। पद्य क्या हैं ? जैन सिद्धान्त के सूत्र हैं जिनमें घटना क्रम और कथानकों के सुरभित सुमन पिरोये गये हैं।

ग्रन्थ के पन्ने पलटते हुये ऐसा प्रतीत होता है जैसे छाया चित्र पटल पर महावीर श्री की फिलम रील क्रम वद्ध रूप से चल रही हो। संक्षिप्त और ललित पद्य संगीत का कार्य करते हुये कथानक को रोचक वनाते जाते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण कार्य कितना परिश्रम साध्य, व्यय साध्य और समय साध्य रहा इसकी कटुक अनुभूति सिवाय भुक्तभोगी सम्पादक के और किसी को नहीं हो सकती। अनु-भूति तो अवश्य कटुक थी परन्तु उसका परिपाक अन्तरात्मा में अपूर्व माधुर्य रस घोल रहा था। उसी माधुर्य ने केवल लक्ष्य विन्दु पर ही दृष्टि रखी। कंटकाकीर्ण मार्ग पर नहीं।

एक वर्ष पूर्व इस चित्र शतक की कल्पना भी मेरे मस्तिष्क में नहीं थी। वह तो दिल्ली निवासी श्री पन्नालाल जी जैन आर्चिटेक्ट महोदय का सवल निमित्त था जो निरन्तर प्रेरणा की इकाई वनकर इस पुनीत निर्माण कार्य को सम्पन्न कराने में सदैव स्मरणीय रहेगा। उनके दैनिक पत्र व्यवहारों ने मेरी शिथिलताओं के विरुद्ध अंकुश का बृहत्तर काम किया। वस्तुतः इन्हीं महावत श्री के निर्देशन में 'महावीर श्री चित्र शतक' का

यह गुरुतर गजरथ संचालित किया गया है, अतः उनके प्रति मैं श्रद्धा पूर्वक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

कृतज्ञता के द्वितीय सुपात्र आदरणीय श्रीमान् बाबू रतन लाल जी जैन वकीलपुरा देहली हैं जो हमारे प्रकाशनों में मुक्त-हस्त से आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हें प्रकाश में लाने का पुण्यार्जन करते ही रहते हैं । इस ग्रन्थ के एक खण्ड के प्रकाशन का भार अपने कंधों पर लेकर हमारे ऊपर भारी अनुकम्पा की है एतदर्थ हम उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं ।

कृतज्ञता के तृतीय एवं चतुर्थ पात्र हैं श्री बाबू दुर्गादीन जी श्री वास्तव एडवोकेट तथा श्री रमेश सोनी 'मधुकर' । दोनों महानुभाव सुमधुर गीतकार एवं सिद्ध हस्त चित्रकार हैं । स्थानीय विद्वानों के निर्देशन में रहकर उन्होंने न जाने कितनी बार इन चित्रों को संवारा सजाया है । चित्र संकलन और चित्र निर्माण में जमीन आसमान का अन्तर होता है । उभय चित्रकारों के जैनेतर होने से उनके सामने सैद्धान्तिक अबोधता की विकट समस्यायें थीं । उन्हें हल करने के लिये भी कम प्रयास नहीं करने पड़े ।

हमारे परम स्नेही सहयोगी सम्पादक श्री फूलचंद जी पुष्पेन्दु शिक्षक श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई ने इस ग्रन्थ के निर्माण कार्य सम्पन्न करने के लिये वस्तुतः कुछ उठा नहीं रक्खा अतः उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करके हलका फुलका हो जाना चाहता हूँ ।

इस सुअवसर पर मैं श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई के प्राचार्य श्रीमान् नेमिचन्द जी जैन एम० ए० साहित्याचार्य बी० एड० को भी कदापि विस्मरण नहीं कर सकता जिन्होंने इस ग्रन्थ को सजाने-संवारने में समय-समय पर अपनी बहुमूल्य रायें देकर हमें उपकृत किया है, वा मेरी प्रार्थना पर उन्होंने सम्पादकीय वक्तव्य लिखकर मुझे आभारी बनाया है ।

यह चित्र शतक कैसा क्या है ? इसकी उचित समीक्षा तो दर्शक और पाठक ही न्याय पूर्ण ढंग से कर सकते हैं। मैं स्वयं क्यों इसकी प्रशंसा करके अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने का आरोप सिर पर लूँ। अस्तु—

मेरे जीवन-दीप का निर्वाण भी न जाने किस क्षण हो जाये इस आशंका ने ही मुझे निरन्तर ही शुभोपयोग में प्रवृत्त रखा है।

भगवान् महावीर श्री की २५०० सौवीं वर्ष तिथि पर यह चित्र-शतक उनकी पावन स्मृति को युग युगान्त तक अमर रखे इस महान पवित्र भावना के साथ उन्हीं के पावन चरणों में यह ग्रन्थ समर्पित करते हुये पुलकित हो रहा हूँ। 'इत्यलम्'

खुरई (जिला सागर) म० प्र०
दिनांक ९-८-१९७४

विनयावनत—
कमल कुमार जैन शास्त्री,
"कुमुद"

ग्रन्थ-प्रसंग

अनादि निधन सनातनता को काल की सीमा में कभी भी नहीं बांधा जा सकता तथापि पुराण और इतिहासों ने सदैव ही किसी एक कल्पित बिन्दु पर स्थित होकर अपने को आदिम इकाई घोषित किया है। आकाश और पृथ्वी का जिस कल्पित रेखा पर संगम का प्रतिभास होता है उसे क्षितिज कहते हैं। पुराणों के आकाश और इतिहास की धरातल का संगम भी एक ऐसा ही कल्पित क्षितिज है जहां से सभ्यता अथवा मानव विकास की कहानी का प्रारंभ किया जाता है। उदाहरण के लिए आदिमयुग पर हम विचार करें। आधुनिक इतिहास जिस आदिमयुग की चर्चा करता है उसे वह स्वयं नहीं जानता। पुराण उसे समझाते हैं कि वह आदिमयुग दूसरा नहीं वल्कि इस कल्प काल की कर्मभूमि का प्रारम्भिक युग है जिसके प्रणेता आदिनाथ अर्थात् राजा ऋषभदेव थे। वहीं से मानव सभ्यता के विकास की क्रमिक कहानी का प्रारम्भ होता है।

अन्तिम मनु (कुलकर) श्री नाभिराय जी के पुरुषार्थी पुत्र युवराज ऋषभदेव ने स्वयं कर्मभूमि के प्रारम्भ में मनुष्यों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य की शिक्षा देकर उनका सतत विकास करनें का परामर्श दिया। सब से पहिले मानव के द्वारा अपने विचार मौखिक ही व्यक्त किए गये, पर जब विचारों को लिपिवद्ध करने की आवश्यकता पड़ी तब कुछ संकेत चिन्ह बनाए गए। सभी ने अपने क्षेत्रों में अनेकों प्रकार के संकेत चिन्ह निर्मित किये और उन्हें आधार मान कर विचारों के लिपिवद्ध करने की परम्परा प्रारम्भ की गई। यही कारण है

कि आज विश्व के कोने-कोने में हजारों भाषाओं और सैकड़ों लिपियां देखने में आ रही हैं।

विचारों के विकास के साथ मानव में एक दूसरे के प्रति प्रेम-पूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न हुई। कालान्तर में संसार के सुखों एवं दुखों को देखकर ईश्वर की परिकल्पना को जन्म दिया गया। अवतारवाद की आंधी विश्व में फैली और विविध धर्मों का जन्म हुआ। अनेकों विचारक आये और उन्होंने अपने-अपने विचार व्यक्त कर मानव समुदायों को अपना अनुयायी बनाया। इस प्रकार भले ही प्रथमानुयोग में दृष्टान्तों द्वारा मानवत्व के विकास की कहानी का आदि और अन्त प्रतिपादित किया हो परन्तु द्रव्यानुयोग ने तो आत्मा के विकास की ही कथा अनादि और अनन्त की भाषा में सतत कही है। कोई उसे सुने या नहीं। वह कहानी तो आज भी चल रही है, कल भी चलती रहेगी एवं विगत कल भी चलती रही थी। उसकी अजस्र धारा तीनों काल प्रवहमान है। तो भी आध्यात्म की यह कथा मुग्ध सुषुप्त और मूर्च्छित जीवों को शीघ्र सुनाई नहीं देती, बल्कि आध्यात्मिक क्रान्ति के नगाड़े जब उनके कानों पर जोर-जोर से बजते हैं तभी उनकी मोह-निन्द्रा भंग होती है। और वे देखते हैं उस युग-पुरुष को जिसने चैतन्य आत्म जागृति का बिगुल फूंक कर उन्हें जगाया है। बस तभी से उनकी आत्मा के विकास की कहानी का प्रारम्भ हो जाता है।

भगवान महावीर स्वामी भी एक ऐसे ही आध्यात्मिक क्रान्ति के अग्रदूत युग-पुरुष थे जिन्होंने ईश्वरवाद, व्यक्तिवाद, स्वार्थ-वाद, कर्मवाद, पाखंडवाद, अवतारवाद की जड़ी भूत रूढ़ मान्यताओं के विरुद्ध क्रमशः शुद्धात्मवाद, परमात्मवाद, आत्म-वाद, परमार्थवाद और मोक्षवाद, अनेकांतवाद का प्रतिपादन करके प्राणिमात्र के क्षद्रतम अहं को भी सिद्ध जैसे विराट्तम

अर्हं के पद पर पहुंचने की प्रेरणा दी—ज्ञान दिया। इस भांति सनातनता का आदि मध्य और अन्त सभी कुछ आत्मतत्त्व पर केन्द्रित हो गया। फलस्वरूप प्रत्येक आत्मा ने जब अपने में झांक कर देखा तो निश्चयतः उसे परमात्मा के पुनीत दर्शन हुए।

हम जानते हैं कि जिस वस्तु का विकास होता है उसका विनाश भी होता है। ज्ञान भी वर्धमान एवं हीयमान, अव स्थित एवं अनवस्थित होता है। चाहे कारण कुछ भी हो भारतीय संस्कृति का भी यही हाल है। वर्तमान में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति का क्रमिक ह्रास होता जा रहा है। मानव की संघटनात्मक प्रवृत्तियां समाप्त हो रही हैं और विघटनकारी प्रवृत्तियां पनप रही हैं। सारा राष्ट्र एक असंतुलन की स्थिति से गुजर रहा है। सर्वत्र अशान्ति एवं अराजकता की भयंकर स्थिति नजर आ रही है। जो मनुष्य थोड़ा भी समझदार है वह चाहता है कि अब देश में कोई एक ऐसी व्यवस्था आवे जो शान्ति एवं स्थिरता उत्पन्न करे। मैं समझता हूं कि भगवान महावीर के उपदेश वर्तमान स्थिति को काबू में करने के लिए अत्यधिक समर्थ हैं।

"महावीर श्री चित्र-शतक" ग्रन्थ में भी भगवान महावीर स्वामी के जन्म जन्मान्तरों के चित्रों के द्वारा द्वारा प्रदर्शित करने का सुप्रयास किया गया है कि आत्मा का क्रमिक विकास किन ऊबड़ खाबड़ या उच्चसम परिस्थितियों से गुजर कर हो पाता है। महावीर जिस प्रकार अनेकों भवों के आधार पर अपना विकास कर जगत्पूज्यत्व प्राप्त कर सके उसी प्रकार प्रत्येक मानव की अपनी अन्तरंग आत्मा ईश्वरत्व सम्पन्न है। अगर विकास हो तो ईश्वर बना जा सकता है।

'महावीर श्री चित्र-शतक' के चित्र आत्मा के क्रमिक विकास के साक्षात् प्रमाण हैं। प्रथमानुयोग उन्हें मानव के क्रमिक

विकास की कहानी कहता है। चित्र लिपि में लिखित ये चित्र हमें यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि अगर शाश्वत सुख शान्ति की अभिलाषा है तो अपनी आत्मा का विकास करें। विकास की गति जितनी सशक्त होगी सुख एवं शान्ति उतनी ही निकट होगी।

भगवान महावीर के पच्चीस सौवें परिनिर्वाणोत्सव के अवसर पर हम 'महावीर श्री चित्र-शतक' एक सचित्र ग्रन्थ प्रस्तुत कर अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। आशा करते हैं कि चित्रों के साथ दिये गये हिन्दी छन्द उन्हें समझाने में सहायता करेंगे।

सभी प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त करने का पथ प्राप्त कर सकेंगे इस महान आशा के साथ हम यह ग्रन्थ सभी पाठकों के कर-कमलों में समर्पित कर रहे हैं।

नेमिचन्द जैन एम. ए.
साहित्याचार्य
प्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल
खुरई (सागर) म. प्र.

जिनके

प्रशान्त ललाम दिव्य स्वरूप को

स्वयं इन्द्र ने सहस्र सहस्र लोचनों से देख कर भी

तृप्ति प्राप्त न की

और

अपनी प्रसन्नता के पारावार को

तांडक नृत्य द्वारा भी किंचित अभिव्यक्त न कर सका

ऐसे

पांडुक शिला पर विराजमान

एक हजार आठ स्वार्णभ कलशों से

क्षीरोदक द्वारा अभिषिक्त

नवजात वर्द्धमान

अपने जन्म कल्याणक महोत्सव द्वारा

हमारे

जन्म-मरण का नाश करें

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

भीकमसेन रतनलाल जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली ११०००६

जो

समवशरण के हृदय-कमल पर अन्तरीक्ष विराजमान हैं

तथा

जो तीन छत्र, चौंसठ चँवर, देव दुन्दुभि, अशोक वृक्ष,

प्रभा-मण्डल, रत्न सिंहासन, पुष्पवृष्टि

और

दिव्य ध्वनि इन अष्ट प्रातिहार्यों से मंडित हैं

ऐसे

गणधर चर्चित सुरपति अर्चित

तीर्थंकर महावीर प्रभु

अपनी प्रशान्त वैर विरोधी शीतल शान्त छत्र-छाया

में

इस क्षुद्र प्राणी को स्थान दान देकर

धर्माम्मृत का आस्वाद कराने की दया करें

परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

पन्नालाल जैन आर्चिटेक्ट (साहित्यकार)

व्यवस्थापक जैन साहित्य प्रकाशन

४९८३ शिवनगर न्यू देहली

११०००५

जिन्होंने भगवती अहिंसा की

सार्वभौमिक सार्वकालिक सार्वजनीन

प्रतिष्ठा द्वारा

दया-करुणा एवं विश्ववन्धुत्व

की

सुधा सरिता वहाकर

विश्व का कोना कोना रस प्लावित कर दिया

उन

सन्मति श्री के

पावन पाद-पद्मों में

हमारी कोटि-कोटि अर्चनाएँ

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

राधामोहन जैन, राधा फैन्सी स्टोर्स

६८ चांदनी चौक देहली-६

अधिकृत विक्रेता

फोटो केमरे और उनका सामान, फोटो स्टेट कापीज,

टार्च, चश्मे एवं फाउन्टेनपेन इत्यादि

जो

तत्त्व-बोध स्वरूपी सम्यक् ज्ञान के सम्पूर्ण विकसित

कैवल्य के द्वारा बुद्ध ही हैं

जो

तीनों लोकों के परम कल्याणकारी होने से

शिव शंकर ही हैं

जो

रत्नत्रय मंडित प्रशस्त मोक्ष-मार्ग के

विधि-विधायक होने से

ब्रह्मा विधाता ही हैं

एवं

जो आत्म-पौरुष की सर्वश्रेष्ठ उत्तमता को प्राप्त होने से

प्रत्यक्ष ही पुरुषोत्तम विष्णु हैं

ऐसे

एक हजार आठ नामों से संबोधित होने वाले

वर्द्धमान स्वामी

हमारा सबका कल्याण करें

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

साहित्यरत्न पं० हीरालाल जैन 'कौशल' शास्त्री

अध्यक्ष जैन विद्वत्समिति

३७४९ गली जमादार पहाड़ी धीरज देहली-६

जिन्होंने आत्मीय स्वावलम्बन का

परमोत्कृष्ट

आदर्श प्रस्तुत करके

अपने जीवन को

पूर्ण रूपेण अपनी वैयक्तिक चर्या में व्यक्त किया

और

जिन्होंने मुक्ति

"प्राणिमात्र का जन्म सिद्ध अधिकार"

इस दिव्य निनाद को

तीनों लोकों में गुंजायमान किया

उन्हीं

महावीर श्री

के पुनीत चरणों में

हमारे कोटि कोटि प्रणाम

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

धर्मचन्द जैन पांड्या

रतन वेस्ट मकराना स्टोन सप्लाई कम्पनी

मकराना (राजस्थान)

मकराना संगमरमर के किसी भी काम के लिये सेवा का मौका दे

जो
श्रमण संस्कृति के अप्रतिम नायक
युग वोध के चैतन्य प्रतीक
एवं
वीतराग विज्ञानता के मूर्तिमान स्वरूप थे
उन

तीर्थंकर वर्धमान महावीर के

पुनीत चरणों में मेरे श्रद्धा प्रसून समर्पित हैं
कवि श्री सुधेश के
स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी उनकी वंदना करता हूं
जिनके वंदन ही भवाताप—
हित दाह निकंदन चंदन हैं।
इस आनन्दित कवि वाणी से
वंदित वे त्रिशलानन्दन हैं ॥
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
फर्म हजारीलाल शिखरचन्द जैन
वस्त्र-विक्रेता अमरपाटन (म. प्र.)

—सहयोगी संस्थान—

सिं० हजारीलाल
शिखरचन्द जैन
वस्त्र विक्रेता
सतना (म. प्र.)

सिं० शिखरचन्द
रतनचन्द जैन
वस्त्र विक्रेता
सतना (म. प्र.)

जिन्होंने

हिंसा एवं पाखंड का ताण्डव समाप्त करके

प्रेम और अहिंसा का सुखद समीर बहाया

तथा

परम आत्म कल्याणक मूल्यों को जीवन में

प्रयोगात्मक रूप दिया

उन

महाप्रयाणी वीतराग जिनवर दिव्यज्योति स्वरूप

विश्व प्रेरक महाश्रमण

भ० महावीर स्वामी के

पादारविन्दों में

भावसूत्र गुम्फित श्रद्धा-सुमन

अर्पित हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

क्षुद्र श्रावक फतेचन्द जैन सराफ

शमसाबाद (आगरा) उ. प्र.

अपने ध्यान का ध्येय वनाने से भव्यजीव

स्वद्रव्य परद्रव्य का

तथा

औपाधिक भाव एवं स्वभाव-भाव का

भेद विज्ञान करते हैं

ऐसे

स्वयं सिद्ध

शुद्धात्म स्वरूप को दर्शाने वाले

प्रतिविंवादर्श

कृत्कृत्य परमेष्ठी

श्री सन्मति प्रभु

के

पावन-पाद-पद्मों

में

हमारी कोटि कोटि अर्चनाएँ अर्पित हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

ई० डी० अनंतराज शास्त्री

मु. पो. नल्लूर वाया तेल्लार (एन. ए. डी. ई.) मद्रास

जो गृहस्थावस्था त्याग कर मुनिधर्म साधन द्वारा
चार घातिया कर्म नष्ट होने पर
अनंतचतुष्टय प्रगट करके
कालान्तर में
चार अघातिया कर्मक्षय होने पर
पूण मुक्त हो गए हैं
तथा
जिनके द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का सर्वथा अभाव होने से
समस्त आत्मीक गुण प्रगट हुए हैं
और
जो लोकाग्र शिखर पर किंचित न्यून पुरुषाकार
विराजमान हैं
ऐसे

सिद्ध परमेष्ठी श्री महावीर परमात्मा

हमारे निरन्तर आराध्य बने रहें
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—

जयन्ती प्रसाद सुकमाल चन्द जैन
मु. पो. खेड़ा लड० सरधना
(जिला मेरठ) उ. प्र.

जिन्होंने सर्व धर्म समन्वय सम्पन्न

समझौता वादी नीतियों की नींव पर

अनेकान्त सिद्धान्त का

वह प्रामाणिक धर्म-महल खड़ा किया

जिसकी छत्रच्छाया में

प्राणिमात्र चैन की सांस लेता हुआ

आज

अपना आत्म-कल्याण कर सकता है

उस

अनेकान्त प्रतिपादक-वस्तु-स्वरूप दिग्दर्शक

श्री वीर प्रभु के

चरण-कमलों में शत-शत अभिनन्दन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

चमनलाल फूलचन्द शाह जैन

मु. पो. पादरा (वड़ौदा)

गुजरात

जिनका विमल स्फटिक मणि तुल्य पारदर्शी मानवत्व

शुभ अर्हत्व में परिणत होकर

आलौकिक आदर्श की चरम-सीमा का

ऐसा

सच्चिदानन्द घन ध्रुव केन्द्रविन्दु

वन गया

जिसका माप तीनों कालों और तीनों लोकों की

वृहद परिधियों से नहीं

वल्कि

मात्र आत्म केन्द्रता से ही सम्भव है

उन

परम ज्योति अरिहंत प्रभु

श्री वीरनाथ के

चरणों में हमारा कोटि कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

तिलोकचन्द पाटनी

प्रचारमन्त्री मनीपुर प्रांतीय दि० भ० महावीर २५०० सौ वां

निर्वाण महोत्सव समिति इम्फाल (मनीपुर)

जो सच्चे अर्थों में एक आदर्श नेता हैं-प्रणेता हैं

परन्तु

जिन्होंने बंध-मार्ग का नहीं अपितु

मोक्ष-मार्ग का नेतृत्व किया

एवं

वाचाल उपदेष्टा बनकर नहीं

वल्कि

कैवल्य प्राप्ति तक मौन साधक रहकर

उन्होंने जैसा देखा, वही सबको कर दिखाया

ऐसे

कर्म पर्वतों के भेत्ता तथा विश्वतत्त्वों के वेत्ता

महावीर श्री

के चरणारविंदों का हम बार-बार

अभिनंदन करते हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

नथमल भागचन्द जैन

जनरल मर्चेन्ट गवर्नमेंट फुडग्रेन

एण्ड शुगर होल सेलर्स

मु. पो. लालगोला पिन कोड ७४२१४८

जिला मुर्शिदावाद (पश्चिमी बंगाल)

जिनकी स्याद्वादमयी मन्दाकिनी
विविध नय कल्लोलों से तरंगित होकर
आज भी
इस वसुन्धरा पर
अजस्ररूप से प्रवाहित हो रही है
तथा
जिसके सम्यग्ज्ञान सरोवर में
विवेकी मानस हंस किल्लोलें करते हुए
अपनी चिर पिपासा शांत करते हैं
ऐसे

महावीर वर्द्धमान स्वामी

हमें भी
अपनी दिव्य-ध्वनि की विमल-गंगा में
अवगाहन करने का सुअवसर दें
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—

श्रीमन्त सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
बीड़ी निर्माता एवं बीड़ी पत्ते के व्यापारी
चमेली चौक सागर (म. प्र.)

जिनके

महा मंगलमय पंच कल्याणक महोत्सव

न केवल मानवेन्द्रों द्वारा वल्कि शतेन्द्रों द्वारा सम्पन्न हुए

और जो

अलौकिक एवं चामत्कारिक चौंतीस अतिशयों

तथा

अष्ट महा प्रातिहार्यों जैसे वाह्य ऐश्वर्यों के स्वामी थे

वे

अतंरंग अनंत चतुष्टय लक्ष्मी के धनी

श्री महावीर स्वामी

हम सव को

ऋद्धि सिद्धि के प्रदाता वनें

परम-पुनीत- पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सेठ खेमचन्द मोतीलाल जैन

कुशल कारीगिरों द्वारा वनवाई गई ढोलक छाप वीड़ी के निर्माता

पलोटन गंज सागर म. प्र.

हे भव्य जीवो !

मेरा सुदूर अतीत भी तुम्हारे सदृश्य ही हीयमान होकर

भव-भ्रमण के निविड तिमिर में

अनंत कल्पकालों से असहाय भटकता फिरा

किन्तु

ज्यों ही मैंने अपने स्वरूप का भान किया

स्वपर भेद विज्ञान किया

आत्म-साधना का दृढ़ व्रत ठान लिया

त्यों ही चल पड़ा—

सम्यक् रत्नत्रय के पथ पर मेरे जीवन का रथ

और जाकर रुका वहां

लोकाग्र के शिखर पर

जहां मेरी अन्तिम मंजिल थी

सिद्ध-शिला

तो तुम भी आओ वहीं उसी पथ से

मैं तुम्हारा प्रकाश स्तम्भ बन कर कब से

खड़ा हूं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

वालचन्द श्री व्रती वाङ्मय संस्थान

संचालक फूलचन्द बाबूलाल जैन वैद्य

खुरई (जिला सागर) म. प्र.

जिनके कैवल्य रूपी चैतन्य आदर्श में

लोकालोक के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ

युगपत्

निज गुण पर्यायों सहित

त्रयकाल

प्रतिविम्बित होते रहते हैं

ऐसे

प्रत्यक्षदर्शी सन्मार्ग प्रकाशक सर्वज्ञ-सूर्य

भगवान महावीर स्वामी

हमारे अन्तर्वाह्य लोचनों के आगे
निरंतर झूलते रहें
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

कृषि पंडित श्रीमन्त सेठ ऋषभ कुमार बी. ए.

लेंड लार्ड एन्ड वेंकर्स

भूतपूर्व विधायक खुरई (सागर) म. प्र.

जिन्होंने

आवश्यकताओं की समानान्तर मर्यादाओं से

वाहर भागने वाली दुष्प्रवृत्तियां

संग्रह परिग्रह जमाखोरी आदि की

आशक्तिपूर्ण

मूर्च्छका

डटकर विरोध किया

उन अकिंचन अरिहंत परमात्मा

श्री अतिवीर स्वामी

के

चरण सरोजों में

भावभीनी पुष्पाञ्जलि समर्पित है

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

धन्नालाल प्रेमचंद सराफ

नानकवार्ड खुरई (सागर) म. प्र.

फर्म—दमरूलाल कन्नालाल सराफ | फर्म—सराफ व्रदर्श
सराफी दुकान खुरई | गल्ले के व्यापारी खुरई

जो आत्म-स्वरूप में संस्थित होते हुए भी
सर्व व्यापी हैं
सम्पूर्ण लोक व्यवहार-व्यापारों के वेत्ता होने पर भी
परम अकिंचन हैं
इच्छाओं का अस्तित्व न होने पर भी
जिनके
सर्वांग से दिव्य-ध्वनि खिरती है
जाग्रत उपादन वाले भव्य जीवों को
जिनकी ध्वनि जड़ होते हुए भी समर्थ निमित्त वनती है
ऐसे
समवशरण-साम्राज्य के एकच्छत्र निर्लिप्त सम्राट् अरहंत प्रभु

श्री महावीर स्वामी की

मांगलिग शरण में
मैं
अपना आत्म-सर्मपण करता हूं
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
चौधरी आइल मिल्स
स्टेशन रोड खुरई (जिला सागर) म. प्र.
(विशुद्ध खाने का तेल वनाने में शासन से स्वर्ण-पदक प्राप्त)

जिन्होंने पर्याय गत अहं को गौण करके द्रव्यगत अहं के

दिग्ददर्शन की सम्यक् विधि

प्रतिपादित की

और

जिन्होंने

मिथ्यात्व पर सम्यक्त्व की

स्वार्थ पर आत्मार्थ की

संसार पर मुक्ति की

विजय

दुन्दुभि बजाई

उन

महावीर श्री

के युग चरणों में मेरा बारम्बार नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

हे परम अकिंचन निर्ग्रन्थ देव !

श्री महावीर प्रभो !

आपके पास किंचिन्मात्र भी लौकिक विभूतियें नहीं हैं

तथापि

आप तीनों लोकों के श्रेष्ठ एवं सुविख्यात दान शिरोमणि हैं

क्योंकि

निरन्तर ही शम-सम की अविनश्वर

मणियां लुटाते ही रहते हैं

आप

ऐसे अचल हिमालय हैं जो स्वयं जल हीन होने पर भी

गंगा जैसी अगणित सरिताओं का

उग्दम केन्द्र हैं

और

हम अपार जल-राशि से भरे हुए ऐसे अभागे खारे समुद्र हैं

जिनमें से

एक भी नदी निकलती नहीं है

अतएव

हम भिक्षुक होकर आप से अपना ही स्वरूप मांगने

आपकी शरण में आये हैं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

ज्ञानकुमार हुकमचंद जैन धनोरावाले

शिवाजी वार्ड खुरई (जिला सागर) म० प्र०

जिनका

परमौदारिक शरीर

काम क्रोधादिक सर्व निंदनीय वैभाविक चिह्नों से

सर्वथा वर्जित है

तथा

जिनके दिव्य वचनों से

लोक में धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन होता है

ऐसे

गणधर इन्द्र एवं अनेकांत मूर्ति सरस्वती द्वारा स्तुत्य

परमात्मा

श्री महावीर स्वामी

पुनीत चरणों में

हमारा

कोटि-कोटि नमन

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

चौधरी शीलचंद अनिल कुमार जैन

चौधरी कटपीस वस्त्र भंडार

नानकवार्ड खुरई (सागर) म. प्र.

हे महावीर प्रभो !

वह भी एक कूप मंडूक था !

मैं भी एक पर्यायमूढ़ कूप-मंडूक हूं !!

वह पशु पंचेन्द्रिय था

मैं मनुष्य पंचेन्द्रिय हूं

किन्तु······

नाथ !

उसकी भाव-भीनी भक्ति वंदना-पूजन-अर्चना ने

एक कमल पांखुरी लेकर ही उसकी

वह

तुच्छ पर्याय छुड़ा दी

और

सुर-पर्याय प्रदान की

फिर

आप ही वतलाईये आप की पुनीत सेवा में

मैं क्या प्रदान करूँ कि

मुझे वैयक्तिक पर्याय से

मुक्ति मिले

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सतपाल क्लाथ स्टोर

प्रो. परमानन्द जेऊमल सिंधी

स्टेशन रोड खुरई (सागर) म. प्र.

जिनकी
विशाल हृदया अहिंसा से मात्र वैशाली का ही नहीं
वल्कि
तीनों लोकों के हृदय विशाल हो गये
और
जिनकी पावन निर्वाण विभूति से मात्र पावा ही नहीं
वल्कि
प्रत्येक आत्मा का कोना कोना पावन हो गया
ऐसे
जाज्वल्यमान ज्योतिर्मय तीर्थङ्कर

परमात्मा महावीर स्वामी

के
पुनीत चरणों में
हमारी कोटि कोटि वंदनाऐं
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
चौधरी खेमचंद मुन्नालाल जैन
नानकवार्ड खुरई (सागर) म. प्र.
कुशल कारीगरों द्वारा हिन्दनुतारण हार (चरखा-छाप) वीड़ी के
एकमात्र निर्माता

जो
अनंत ज्ञान द्वारा अपने अनंत गुण पर्यायों को
एवं
समस्त जीवादि द्रव्यों को एक साथ ही
विशेष प्रत्यक्षता से
कर-तल आमलक वत् जानते हैं
तथा
जिनके चतुर्दिक पार्श्व में
लौकिक प्रभुत्व अतिशय एवं पूज्यता का
वाह्य संयोग
निश्चयत: पाया ही जाता है
ऐसे
अरहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ परमात्मा

श्री वर्द्धमान स्वामी के

चरणों में
हमारी कोटि कोटि वन्दनाएं
अर्पित
हैं
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—

हे भव्य जीवो !
मेरा सुदूर अतीत भी तुम्हारे सदृश्य ही हीयमान होकर
भव-भ्रमण के निविड़ तिमिर में
अनंत कल्पकालों से असहाय भटकता फिरा
किन्तु
ज्यों ही मैंने अपने स्वरूप का भान किया
आत्म-साधना का दृढ़ व्रत ठान लिया
त्यों ही चल पड़ा
सम्यक् रत्नत्रय के पथ पर मेरे जीवन का रथ
और
जाकर रुका रुका वहां लोकाग्र के शिखर पर
जहां पर मेरी अन्तिम मंजिल थी

सिद्ध-शिला

तो तुम भी आओ वहीं उसी पथ से
मैं तुम्हारा प्रकाश-स्तम्भ वन कर कव से खड़ा हूं।

मैं स्वयं वर्द्धमान हूं

तुम भी स्वयं सिद्ध वर्द्धमान हो
जरा अपनी ओर निहारो तो
मेरा
वरद-हस्त तुम्हारे ऊपर है
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—

चौधरी खेमचंद मुन्नालाल जैन

जिनके समवशरण का अलौकिक वैभव

समाजवाद-साम्यवाद

एवं

सर्वोदय वाद

का

एक ज्वलंत-आदर्श एवं प्रमाणिक प्रतीक था

उन अंतरीक्ष परमात्मा

श्री वीर प्रभु के

चरणार विंदों में

हमारी कोटि-कोटि वंदनाऐं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

दीपचंद मुलायम चंद एवं समस्त मलैया परिवार

खुरई (जिला सागर) म. प्र.

हे परम ज्योति वीरप्रभो !

आप एक ऐसे अनुपम चिन्मय रत्न दीप हैं

जिसमें

आवश्यकता नहीं है

वर्तिका की, तैल की, धूम्र की

तथापि

अपने शाश्वत ज्ञान-प्रकाश से

सम्पूर्ण लोकालोक को आलोकित करते रहते हैं

अतएव

इस पच्चीस सौंवीं दीपमालिका के पावन पर्व पर

आज

मैं आप की लौ द्वारा ही अपना ज्ञान दीप

प्रकाशित करने आया हूं

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

रमेशचंद ताराचंद जैन

वस्त्र विक्रेता स्टे० रोड खुरई (सागर) म. प्र.

जिन्होंने
इस युग में वीतरागता के धर्मतीर्थ का प्रवर्तन
अहिंसा-सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह की
जीवन्तमूर्ति बन कर किया
जो
शमवशरणादिक बाह्य विभूतियों से
और
अनंत चतुष्टयादिक अंतर्वैभव से सम्पन्न थे
तथा जिनके
तीर्थंकर नामकर्म की सर्वोत्कृष्ट महापुण्य प्रकृति का उदय था
ऐसे
निर्लिप्त अनासक्त योगी परम आर्हत

तीर्थंकर श्री महावीर जिनेश्वर के

पादपद्मों में
हमारी कोटि कोटि वंदनाएं
परम-प्रनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
सिंघई परमानंद बाबूलाल जैन
जनरल किराना मर्चेंट एवं
पेटेंट दवाइयों के विक्रेता
मु. पो. खुरई (जिला सागर) म. प्र.

जिह्नोंने
वीरता कीपरिभाषा को दूसरों पर विजय प्राप्त करके नहीं
प्रत्युत
अपने विपर्यय स्वरूप पर विजय प्राप्त करके वदल दिया
तथा
जिह्नोंने वीर भोग्या वसुंधरा के परम्परागत सिद्धांत को
चुनौती देकर वीतरागता के पावन-पथ पर
अपने कदम वढ़ाते हुए
और उसके स्थान पर
"वीर त्याज्या वसुंधरा" के सिद्धांत की प्राण प्रतिष्ठा की
ऐसे

वीर-महावीर अतिवीर प्रभु के

वीतरागी चरणों में
मेरा वारम्वार नमस्कार अर्पित हो।
परम-प्रतीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
छावड़ा वूट हाऊस
प्रो. सरदार चरणजीत सिंह छावड़ा
स्टेशन रोड खुरई (जिला सागर) म. प्र.

१. सच्चाई और सरल व्यवहार व्यापार की कुंजी है।
२. सत्यता से व्यापार वढ़ता है और शाख वनती है।

जिह्नोंने
इस अवसर्पिणीकाल के चौथे चरण की कर्मभूमि में
गर्भावतरण एवं जन्मावतरण के
अलौकिक दृश्य दिखाये
तथा
वैराग्य प्रकरण एवं तत्त्व वोध के प्रतापी पुरुषार्थ ने
उसे तपोभूमि में परिणत कर दिया
ऐसे
जीवन रंगभूमि के अप्रतिम अंतिम अधिनायक

तीर्थेश्वर श्री वर्द्धमान प्रभु ने

सांसारिक स्वांगों से मुक्ति पाकर
जो
अपने सहज सिद्ध शाश्वत स्वरूप की उपलब्धि की
वे

हमारे भी नयन-पथ गामी वने
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि
अर्पयिता :—
ज्योतिषाचार्य त्रिलोकी नाथ जैन
२३४१ धर्मपुरा देहली
११०००६

जिन्होंने
वाल्य-वय में फणधर वेपी संगम देव के
और
उच्छ्रृंखल मत्तगयंदों के मद चूर-चूर किये
कुमार-वय में
अनंग अप्सराओं के रति-भावों को
विरतिभाव से परास्त किया
तारुण्य में
परिशुद्ध आत्मा से कंचन काया की किट्टिमा
तपाग्नि द्वारा प्रथक की
ऐसे
अनुभव वृद्ध जन्म जरा-मृत्यु से रहित
अक्षय अनंत पद से विभूपित

श्री महावीर प्रभु को

कोटि कोटि नमन
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—
सेठ विजय नारायण वीरेन्द्रनारायण
जगतटाकोज डिस्टी व्यूटर्स
चांदनी चौक देहली
११०००६

जिन

महावीर प्रभु ने घाति कर्म शत्रुओं को नष्ट करके
अनंत एवं अनुपम क्षयिक गुणों की प्राप्ति की
तथा जिन्होंने
सम्पूर्ण भव्य जीवों को परमानंद प्रराता
केवल ज्ञान प्राप्त किया तथा
जो
आज भी भव्य जीवों के लिये मुकुट मणि के समान
शोभायमान हैं
ऐसे

त्रैलोक्य तारण समर्थ
वर्द्धमान जिनेश्वर

को
वन्दे तग्दुण लब्धये के स्वर में
मैं
स्तुति वंदना करता हूं
परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयांञ्जलि
अर्पयिता :—

मगनमाला जैन धर्मपत्नी पंकजराय जैन

सुनील कुमार नीनारानी जैन

१२८६ वकीलपुरा देहली

११०००६

हे धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक महावीर प्रभो !

आप

उत्तम गुणों के सागर अठारह दोषों से वर्जित

मोक्षमार्ग प्रणेता

अष्ट कर्म रिपु संहारक पंचेन्द्रिय विषय कषाय विजेता

पंच महाव्रत-पंच-समिति त्रय गुप्ति के

अधिष्ठाता

अत्यन्त महिमा से मंडित

निष्कारण तारण तरण

एवं

मोहान्ध कार के विध्वंसक हैं

हे नाथ

आप की स्तुति जब गणधर इन्द्र भी नहीं कर सकते

तो

मैं किस खेत की मूली हूँ

अतः

नमस्कारों में ही सारी स्तुतियें गूंथ रहा हूँ ।

परम-पुनीत पच्चीस वें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

सेठ पारसदास श्रीपाल जैन मोटर वाले

१४७० रंगमहल

एम० पी० मुकर्जी मार्ग देहली

११०००६

सत्य और अहिंसा ही 'विजय' का प्रतीक है

अतएव जिन्होंने

असत् एवं अनात्मा

पर विजय पाई

और

'वीर भोग्या वसुन्धुरा' की

परम्परा गत नीति को चुनौती देकर

वीर त्याज्या वसुन्धरा

का

विजय स्तम्भ त्रिभुवन के वक्ष के ऊपर रोपा

उन्हीं

१००८ श्री महावीर जी के श्री चरणों में

हमारा वारम्वार नमस्कार

परम-पुनीत पच्चीस वें निर्वाण शतक पर भाव-भीनी विनयांञ्जलि

अर्पयिता :—

विनोदकुमार विजय कुमार जैन

१३१४ वैद्यवाड़ा दिल्ली ११०००६

भगवान महावीर-वर्द्धमान

मांगलिक-जन्मचक्र
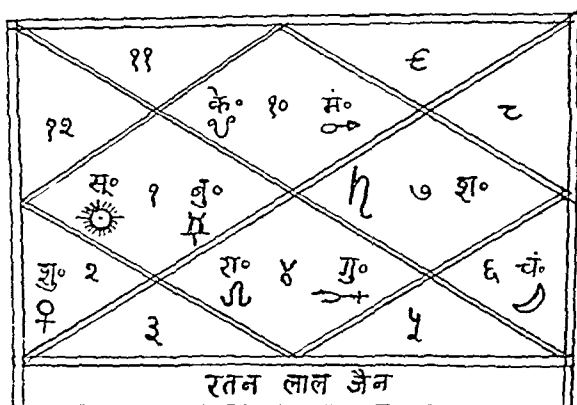
जन्म चैत्र सुदी १३ सोमवार ई० पूर्व ५९९

नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनि सिद्धार्थ संवत्सर (५३)

राशि-कन्या

जन्म स्थान-वैशाली कुण्डलपुर (क्षत्रिय कुंड)

सिद्धार्थ-पिता त्रिशला-माता

चेटक-नाना सुभद्रा-नानी

सेनापति सिंह भद्रादि १० मामा

भगवान महावीर स्वामी के जन्म-लग्न का फलितार्थ

ले० ज्योतिषाचार्य श्री त्रिलोकीनाथ जी जैन, २३४१ धर्मपुरा, देहली

अहिंसा के अवतार भगवान महावीर स्वामी के जन्म के समय निर्मल नभ-मंडल में मकर लग्न उदय में थी। मकर लग्न में मंगल और केतु ग्रह अवस्थित हैं।

द्वितीय स्थान में कुंभ राशि है। तृतीय स्थान में मीन राशि है। चतुर्थ स्थान में मेष राशि के अन्तर्गत सूर्य और बुध हैं। पंचम स्थान में शुक्र वृष राशि गत है। षष्टम् स्थान में मिथुन राशि है। सप्तम् स्थान में कर्क राशि में राहु गुरु हैं, अष्टम स्थान में सिंह है। नवम् स्थान में चन्द्र कन्या राशि के अन्तर्गत है। दशम् स्थान में शनि तुला राशि के अन्तर्गत अवस्थित है। एकादश स्थान में वृश्चिक राशि है तथा द्वादश स्थान में धन राशि विद्यमान है।

लग्न में मंगल मकर राशि में उच्चता को प्राप्त है। यदि मंगल अपनी उच्च राशि में अथवा अपनी मूल त्रिकोण राशि में या स्वराशि में होकर केन्द्र में स्थित हो तो 'रुचक' नाम का योग वनता है।

रुचक योग में जन्म लेने वाले मनुष्य का शरीर अत्यन्त वलिष्ठ और वज्रमयी होता है। अपने सम्यक् विचारों तथा सत्कार्यों से वह विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त करता है। रुचक योग वाला जातक सम्राट् या सम्राट् के समकक्ष होता है। उसकी आज्ञा की कोई अवहेलना नहीं करता अर्थात् प्राणिमात्र उसकी आज्ञा मानने के लिये सदा सर्वदा तैयार रहते हैं। रुचक योग वाला महापुरुष अपने भक्त और श्रद्धालुजनों से चारों ओर से घिरा

रहता है। उसका चरित्र अत्यन्त उच्च कोटि का होता है। ऐसा जातक प्रलोभन या दवाव में आकर अपने निश्चय को कदापि नहीं वदलता।

सूर्य और बुध के मेप राशि में स्थित होने से लग्न में वैठे हुए मंगल में और भी अधिक विशेषता होती है। मंगल पर गुरु की सप्तम दृष्टि सोने में सुहागा जैसा कार्य कर रही है। मंगल ने जातक के शरीर को सर्वोत्कृष्ट कुल में जन्म लेने का अधिकार प्राप्त कराया है। उसने ही उसे उच्चासन पर विराजमान करके शासन के अनुकूल शारीरिक वल एवं सर्वोपरि मान-प्रतिष्ठा प्रदान की। मंगल के साथ केतु भी है। मंगल केतु से अति शीघ्रगामी है अतएव मंगल ने अपने और सूर्य-बुध के गुण केतु को प्रदान करके उसे अपना चमत्कार दिखाने के लिए लग्न (शरीर) में छोड़ दिया।

केतु ग्रह कह रहा है—कि मुझ में अकस्मात् परिवर्तन लाने का विशिष्ट गुण है तथा मुक्ति दिलाने का अधिकार प्राप्त है इसलिये मैं इस जातक के शरीर को अचानक ही परिवर्तन शील वनाऊँगा और ऐसी घटनाएँ घटित करूँगा जिन्हें कभी किसी ने स्वप्न में भी न विचारा हो। समस्त ऐहिक सुखों से वंचित करके एक अनोखे आदर्श पथ पर चलने के लिए जातक के शरीर को वाध्य करूँगा। पुनश्च केतु ग्रह कह रहा है कि मैं तुच्छ विषय सुखों की लालसा को लुप्त करके आकुलता रहित अविनाशी शाश्वत परम सुखों की ओर ले जाऊँगा; क्योंकि मुझमें उच्च के सूर्य और उच्च के मंगल के गुण विद्यमान हैं। उच्च के गुरु की मुझ पर और लग्न (शरीर) पर दृष्टि है। गुरु सन्मार्ग दर्शक है।

भगवान महावीर स्वामी के शरीर का सम्वन्ध सद्गुरु से हुआ और सन्मार्ग पर चलकर आवागमन के चक्कर को सदा-

सर्वदा के लिये समाप्त कर मोक्ष रूपी नवल वधू से नाता जोड़ा। गुरु की सत्कृपा से और ग्रहों के योगायोग से भगवान् महावीर को इस प्रकार की यशः कीर्ति उपलब्ध हुई जो आज तक न भुलाई जा सकी है और न युग युगान्तरों तक भुलाई जा सकेगी।

मंगल ग्रह में महान हठवादिता का गुण होता है। वलात् शासन कराना चाहता है। मंगल की दृष्टि जनता और उसके मन पर पूर्णरूपेण है। ऐसे मनुष्य को बलपूर्वक राज्य करते हुए जनता और उसके मन पर राज्य करना चाहिये था परन्तु ऐसा नहीं हुआ। भगवान् महावीर ने जनता और उसके मन पर प्रेम पूर्वक सद्भावनाओं की छाप अंकित की, जिसमें वल का प्रयोग किंचित भी नहीं किया गया। यह कृपा भी गुरु की है। जिस भाव को राहु और व्ययेश (गुरु) देखते हों मनुष्य उस भाव से उदास और पृथक रहते हैं। यहाँ राहु और गुरु दोनों लग्न (शरीर) देख रहे हैं इसलिये भगवान् महावीर ने शारीरिक नश्वर सुखों को अति तुच्छ समझा और शरीर को तपस्या की भेंट कर दिया तथा झूठे आडम्वरों और झूठी मान प्रतिष्ठा को छोड़ कर सत्यता की खोज करने तथा आत्मा को निर्विकारी बनाकर सदा के लिये अमरत्व प्रदान करने हेतु शरीर को सही मार्ग पर चलने के लिए बाध्य कर दिया।

मकर लग्न चर लग्न है, पृथ्वी तत्त्व है अतएव भगवान् महावीर ने अपना निवास स्थान स्थिर रूप से एक जगह नहीं किया। भूमि पर ही शयन किया।

चतुर्थ स्थान में सूर्य मेष राशि के अन्तर्गत उच्चता को प्राप्त है। सूर्य आत्मा है, सूर्य प्रखर ज्योति स्वरूप है, सूर्य पिता कारक है, सूर्य अश्व का स्वामी है। नभ-मंडल में सूर्य के समक्ष समस्त ग्रह विलीन हो जाते हैं। चतुर्थ स्थान से माता का, जनता का, स्वयं के सुख का तथा भूमि का विचार किया जाता है। सूर्य

मातृ स्थान में स्थित होकर संकेत दे रहा है कि—

माता का सुख उच्च कोटि का होना चाहिये, भूमि संवंधी सुख तथा घोड़े हाथियों संवंधी विशेप सुख होना चाहिये। पिता का सुख भी उच्चतम कोटि का होना चाहिये और उत्कृष्टता की उज्ज्वलतम सुन्दर सुखद भावनाएँ लिये हुये आत्मा को जन साधारण से सम्पर्क करना चाहिये तथा उसे सूर्य जैसा प्रताप प्रदर्शित करना चाहिये।

सूर्य के साथ वुध का योग है। वुध नवम् स्थान का स्वामी है और छटवें स्थान का भी स्वामी है। सूर्य अष्टम् स्थान का स्वामी है। अष्टमेश और नवमेश का योग यदि किसी जातक की जन्मकुंडली में होता है तो राज्य भंग का योग होता है तथा उच्च के ग्रह को यदि दो क्रूर ग्रह देखते हों तो भी राज्य भंग का योग होता है।

सुख स्थान में, मातृ स्थान में तथा भूमि स्थान में सव प्रकार के सुखों से वंचित कराने का विचार सूर्य ने किया। आत्मा को वुध ने याज्ञिक कर्म (आत्म-साधन) में प्रवृत करने का अपना विचार वनाया, चूंकि वुध चन्द्र लग्नाधिपति हैं; इस कारण मन में आत्म-साधन करने का अपना विचार निश्चय पूर्वक दृढ़ किया।

वुध वुद्धि ज्ञाता है, वाणी का कर्त्ता है। वाणी एवं वुद्धि वल द्वारा जन साधारण से सम्पर्क स्थापित कर उसके मन में भी याज्ञिक कर्म कराने की भावनायें वुध ने जागृत कर दीं। सूर्य और वुध मेप राशि (अग्नि राशि) में हैं। चतुर्थ स्थान (अग्नि राशि) में सूर्य कह रहा है—कि मैं सव सुखों को तप की तेज अग्नि में जला कर भस्म कर दूंगा और आत्मन् को इतना प्रताप-वन्त कर दूंगा कि वह सौटंची कुंदन वन जावेगा।

वुध कह रहा है—कि मैं जातक को भाग्य पर भरोसा न

रखने वाला कर्मशूर वना दूगा क्योंकि मुझ पर और सूर्य पर शनि-मंगल की पूर्ण दृष्टि है और मंगल एवं केतु का केन्द्रिय शासन है। यदि इनकी दृष्टि न होती तो मैं सांसारिक सुखों का आनन्द ही आनन्द दिलाता। इस परिस्थिति में मैं तो चाहता हूँ कि भगवान् महावीर स्वामी की आत्मा परम—धाम (मोक्ष) में पहुँच कर आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाये। उच्च के सूर्य ने चतुर्थ स्थान में स्थित होकर सहस्त्रों सूर्य जैसा प्रकाश चारों दिशाओं में फैलाकर आज तक भगवान् महावीर स्वामी के नाम को लोक भर में चिरंतन व्याप्त किया।

भगवान् महावीर स्वामी के समय में हिंसा का अधिकाधिक वोलवाला था। यज्ञ में जीवित अश्वादिकों की आहुति दी जाती थी। तत्कालीन हिंसात्मक असत् धर्म की प्रवृत्ति का अवलोकन जीवित प्राणियों को हवन-कुंड की प्रज्ज्वलित अग्नि में भस्म होते देख कर भगवान् महावीर स्वामी की दयार्द्र आत्मा हा हा-कार कर उठी और अत्यन्त द्रवीभूत होकर अपने समस्त ऐहिक सुखों का परित्याग कर प्राणिमात्र को आकुलता रहित सच्चा सुख प्राप्त करने का उन्होंने दृढ़ संकल्प किया। यह सत्कार्य भी उच्च के सूर्य ने ही किया।

पंचम स्थान में शुक्र स्वराशि के अन्तर्गत है। शुक्र पर किसी शुभ ग्रह की या किसी अनिष्टकारी पापिष्ठ ग्रह की दृष्टि नहीं है। पंचम स्थान से विद्या यंत्र-मन्त्र, सन्तान, सिद्धि आदि के प्रवन्ध का विचार किया जाता है। शुक्र स्वयं ही आचार्य है। मकर लग्न में शुक्र को कारकता प्राप्त होती है। अर्थात् एक प्रकार से विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं। यदि हम ध्यान से देखेंगे तो शुक्र पंचम स्थान में समस्त ग्रहों के गुणों को लिये हुये और समस्त ग्रहों का वल धारण किये हुये स्वराशि में स्थित होकर महावली और हर्षोत्फुल्ल दिखाई देता है। मेष राशि में सूर्य और

वुध विद्यमान होने से दोनों ने अपने-अपने गुण और अपना-अपना वल मंगल को प्रदान कर दिया। मंगल मकर राशि स्थित केतु के साथ है। मंगल और केतु ने सूर्य-वुध के तथा स्वयं अपने-अपने गुण और वल शनि को प्रदान किये। अव शनि सूर्य, वुध, मंगल, केतु के गुणों को धारण करके तुला राशि में विराजमान है। शनि ने अपना एवं सूर्य, वुध, मंगल, केतु के गुण शुक्र को प्रदान कर दिये। इस भाँति शुक्र में सूर्य वुध, मंगल केतु और शनि के वल और गुण समाविष्ट हो गये। राहु और गुरु कर्क राशि गत होने से चन्द्रमा को गुरु और राहु ने अपने-अपने गुण और वल दे दिये। चन्द्रमा कन्या राशि गत है। चन्द्रमा ने अपने तथा गुरु-राहु के गुण वुध को दे दिये इस-लिये शुक्र में सूर्य, वुध, मंगल, केतु, शनि, राहु, गुरु और चन्द्र के गुण और वलों का समावेश हो गया। पंचम स्थान (क्रीड़ा स्थान) में शुक्र कह रहा है कि मुझ में अष्ट ग्रहों का वल है और उन अष्ट ग्रहों में भी तीन उच्च के ग्रहों की भावनायें हैं। मकर लग्न होने से मैं केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी होता हुआ विशेपाधिकार को प्राप्त हूँ। मैं इस जातक को यंत्र-मंत्र-तंत्र तथा उच्चकोटि की ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त कराने में समर्थ हूँ। जातक को ऐसी अलौकिक विद्या से विभूषित करूँगा जो जन-जन को सदैव आकर्पित करती रहे और इनके गुणों की पूजा अर्चा भी होती रहे।

भगवान् महावीर स्वामी को यंत्र-मंत्र-तंत्र सम्वन्धी उच्च-कोटि की विद्यायें, विशिष्ट बुद्धिमत्ता, महाज्ञानी, सर्वज्ञ होने का जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त हुआ। अपने जीवन काल में ऐसे ऐसे चमत्कार दिखाये कि जिससे प्राणिमात्र को उनके समक्ष सदा नतमस्तक होना पड़ा।

सप्तम स्थान में गुरु कर्क राशि के अन्तर्गत है और राहु भी

कर्क राशि में विद्यमान है। कर्क राशि में गुरु उच्चता को प्राप्त है। यदि गुरु उच्च राशि का या स्व राशि का अथवा मूल त्रिकोण राशि का केन्द्र में हो तो 'हंस' नाम का योग वनता है।

हंस योग वाला जातक अत्यन्त सुन्दर होता है, रक्तिम आभा-युक्त मुखाकृति, ऊँची नासिका, प्रफुल्लित कमलोपम सुन्दर चरण युगल, गौराङ्ग, हँसमुख, उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल वाला होता है। ऐसा महापुरुष मधुर भाषी होता है। उसके मित्रों तथा प्रशंसकों की संख्या निरन्तर वढ़ती ही रहती है। सभी के साथ भेद रहित श्रेष्ठ व्यवहार करने का इच्छुक रहता है और उसमें चुम्वकीय व्यक्तित्व होता है।

गुरु विद्या, सन्तान, धन, एवं भाग्य का विधायक एवं प्रशस्त पथ प्रदर्शक होता है। गुरु के विना ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

"गुरु गोविन्द दोऊ ठाड़े किनके लागे पाँय।
वलिहारी गुरु की जिन गोविंद दिये वताय ॥"

मकर लग्न वाले व्यक्तियों को गुरु विशिष्ट फल देने के लिये तत्पर नहीं रहता क्योंकि वारहवें और तीसरे स्थान का स्वामी गुरु होता है। गुरु की दृष्टि लग्न पर ग्यारहवें और तीसरे पर है।

जातक के शरीर को उच्चासन पर आरूढ़ कराने का विचार सन्मार्ग पर चलाने का संकेत, मुक्ति-रमा को प्राप्त कराने की धारणा तथा उच्च विद्याओं से अलंकृत करने का संकल्प गुरु में विद्यमान है। गुरु पर अपने मित्र उच्च के मंगल की दृष्टि है जिससे परस्पर एक दूसरे से सन्मुख दृष्टि सम्वन्ध वना रक्खा है। गुरु के साथ राहु भी सप्तम में है। राहु यदि कर्क राशि में केन्द्र स्थान में स्थित हो तो कारकता को प्राप्त होता है। राहु की दृष्टि भी गुरु की ही भाँति है।

भगवान महावीर स्वामी का शरीर वज्र के समान मजवूत

और अत्यन्त पुष्ट था और ऐसे जातक अन्त समय तक अपने शारीरिक वल से हीन नहीं होते और उनके यशः कीर्ति की पताका विश्व में सदा-सर्वदा फहराती ही रहती है। राहु और गुरु कह रहे हैं कि हम सप्तम स्थान में स्थित हैं। पृथकोत्पादक कारण वनाना हमारा स्वभाव हो गया है अतएव हम स्त्री-सुख से जातक को पृथक रखेंगे और हम पर शनि की १० वीं दृष्टि है अतः वन खण्डों की पद यात्रायें करायेंगे। निर्जन वीहड़ स्थानों में वास करायेंगे। सूर्य और वुध का हम पर केन्द्रीय शासन है अतः वन खण्डों और निर्जन स्थानों में वास करते हुये भी आत्म-ज्ञान और आत्म-दर्शन कराने की हमारी प्रतिज्ञायें हैं। राहु, गुरु की चन्द्र, कर्क राशि में होने से कह रहे हैं कि चन्द्र मन का स्वामी है अतः हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु परिवर्तन लाकर मन को एकाग्र करके आत्म-दर्शन कराते हुये जनता के मन पर भी ऐसी अमिट छाप अंकित करेंगे जिससे प्राणिमात्र युगों-युगों तक याद करता रहे और जातक (भगवान महावीर) के चरण कमलों में नत मस्तक होता रहे।

नवमें स्थान में चन्द्र कन्या राशि के अन्तर्गत है। नौवाँ स्थान धर्म तथा भाग्य स्थान है। पंचम से पंचम होने से विद्या से परमोत्कृष्ट विद्या की ओर वढ़ने का और अपनी सम्पूर्ण कलाओं से भाग्य स्थान में स्थित होकर भाग्योन्नति कराने का संकेत दे रहा है। नौवें स्थान से भी नौवाँ स्थान पंचम स्थान होता है। वह संकल्प तो प्रथम ही शुक्र जातक को परम सौभाग्यशाली-महाज्ञानी एवं उच्च कोटि का धर्म धुरन्धर वनाने के लिये दृढ़ निश्चय कर चुका है।

चन्द्र मन का स्वामी है—चतुर्थ स्थान का कर्त्ता है। ऐसे चन्द्र को राहु और गुरु ने अपनी भावनायें समर्पित करके मन में त्याग और पृथकता, एकान्तवास, धर्म के मर्म की सच्ची

खोज करने के लिये दृढ़ निश्चयी वना दिया। चन्द्र में अमृत है। चन्द्र ने कन्या राशि में बैठ कर बुध को समस्त गुण प्रदान कर दिये और बुध ने सूर्य से योग वनाया अतः उस अमृत का स्वाद आत्मा को आया और उस अमृत को पान करने के उपरान्त सभी सांसारिक सुख और चमचमाती समस्त सम्पदायें हेय प्रतीत हुई और मन में एकाग्रता आने के पश्चात् सर्व ऋद्धि-सिद्धियों पर एकाधिकार हो गया। तथा संसार के समस्त सुखों का वियोग कराके मुक्ति रमा से नाता जुड़वा दिया।

ध्यान रहे कि केतु की नवम् दृष्टि चन्द्र पर है। केतु की इच्छा के विपरीत मुक्ति-मार्ग मिलना असंभव ही है। दशमें स्थान में शनि अपनी उच्च राशि तुला में स्थित है। शनि अपनी स्व राशि में या मूल त्रिकोण राशि में या उच्च राशि का होकर केन्द्र में हो तो 'शशक' नाम का योग वनता है।

'शशक' योग में जन्म लेने वाले जातक साधारण कुल में जन्म लेकर भी राज्य सिंहासन के अधिकारी होते हैं। उनकी सेवा के लिये प्रतिहारी नियुक्त रहते हैं। वह सरल स्वभाव और सौम्य मुद्रा धारी होता है तथा वह दिग्दिगन्त में भारी प्रशंसा का पात्र होता है।

शनि का प्रभाव नभ-मण्डल में सर्वोपरि है। दशम् स्थान से पिता का और निज कर्मों का विचार किया जाता है। दशवें स्थान की उच्च राशि में स्थित शनि पिता की यशः कीर्ति की महानता और प्रसिद्धि की सूचना दे रहा है। शनि कह रहा है—कि मैं दशवें स्थान में उच्च राशि के अन्तर्गत होकर उच्च कोटि के कर्म कराने की क्षमता एवं अधिकार सुरक्षित रखता हूँ अतएव उच्च कर्म कराके ऐसे पद पर पदारूढ़ कराऊँगा जहाँ पर पहुँचने का स्वप्न में भी विचार नहीं आया हो। शनि कह रहा है—कि मुझ में शुक्र को छोड़ कर समस्त ग्रहों की भावनायें विद्यमान हैं

और उसमें भी दो उच्च ग्रहों की भावनायें मुख्य हैं। इसलिये मैं इस जातक को उच्च कर्म कराता हुआ आखिरी मंजिल की अन्तिम सीढ़ी पर ले जाऊँगा। मुझमें मंगल और केतु के गुण होने से परम सुख और मोक्ष में ले जाने योग्य पुरुषार्थ कराने का अधिकार प्राप्त है। सूर्य आत्मा है। मैं शरीर का स्वामी हूँ और दूसरे स्थान (धन) का लक्ष्मीपति हूँ। सूर्य आत्मेश है इस कारण से कायक्लेश पूर्वक भी आत्मा को परमात्मा वनाने का—निर्वाण पद पर पहुँचाने का तथा अपने (जातक के) कुटुम्व को त्याग कराने का सम्पूर्ण अधिकार मुझे प्राप्त हैं। मैं दुःख का कारण हूँ। मेरा नाम सुनकर वड़े-वड़े योद्धाओं एवं शूरमाओं के पराक्रम नष्ट हो जाते हैं। परन्तु जिस जातक पर मेरी कृपा हो जाती है उसकी कीर्ति भी अजर-अमर हो जाती है।

शनि कह रहा है कि मुझ पर उच्च के गुरु का और कर्क के राहु का केन्द्र में शासन है। अतः जातक के शरीर को धर्म के पथ पर चलने और वन-खण्ड—दुर्गम वीहड़ स्थानों—निर्जन वनों में वास कराने की मेरी प्रतिज्ञा है। साथ ही वीतरागता पूर्वक मुक्ति धाम दिलाने की शक्ति मुझ में विद्यमान है परन्तु मुझे अपने मित्र शुक्र से परामर्श करना है क्योंकि मेरी मकर और कुम्भ लग्नों में शुक्र को कारकता का विशिष्ट अधिकार प्राप्त होता है और शुक्र की तुला और वृप लग्नों में मुझे कारकता का अधिकार है। मैं स्वयं तुला राशि के अन्तर्गत हूँ। उच्च पद प्राप्त हूँ अतः अपने समस्त गुण और वल शुक्र को दे रहा हूँ क्योंकि मैं वृद्ध हूँ—मेरी गति मंद है परन्तु अपने मित्र शुक्र को आज्ञा देता हूँ (लग्नेश होने से) कि तुम में भोग सम्वन्धी सुख प्राप्त कराने के गुण वहुत होते हैं इसलिये भौतिक गुणों का त्याग कराके तप-त्याग पूर्वक ऐसी ऋद्धिसिद्धियाँ प्राप्त करना जिससे तीनों लोकों में भगवान महावीर स्वामी का नाम अजर-अमर

और प्रख्यात रहे तथा हमेशा उनकी पूजा-अर्चा-उपासना होती रहे।

आज २५०० सौ वर्षोपरान्त भी भगवान महावीर स्वामी के बतलाये हुए सन्मार्ग पर चल कर उनके अगणित असंख्य अनुयायी भक्त जन और श्रद्धालु जन उनका बारम्बार स्मरण करके उनके श्री चरणों में अपनी विनयाञ्जलियाँ सादर सस्नेह समर्पित करते हुए कभी नहीं अघाते।

जन्म लग्न फलितार्थ

महावीर श्री के चरणों में सादर समर्पित

विश्व का आधार

अणुव्रत अनुशास्ना आचार्य श्री तुलसी जी

एक ही व्यापक अहिंसा विश्व का आधार हो।
मित्रता के सूत्र में आबद्ध सब संसार हो।।
शान्ति-सुख की चाह जग में, कौन कब करता नहीं?।
(पर) कल्पना के कौर भरने से उदर भरता नहीं।।
साध्य मिलता है तभी जब साधना साकार हो।। एक०।।
वैर बढ़ता बैर से प्रतिशोध फिर होती घृणा।
होड़ जो शस्त्रास्त्र की है युद्ध को आमन्त्रणा।।
प्रेम का पथ जो निरापद क्यों नहीं स्वीकार हो।। एक०।।
श्याम शिर से शेर डरता श्याम शिर फिर शेर से।
भय से भय शंका से शंका, बैर बढ़ता बैर से।।
नर मिले सब को अभय का एक आविष्कार हो।। एक०।।
हो विचारों का अनाग्रह स्वाद यह 'स्याद्वाद' का।
और आचरणों में 'तुलसी' अन्त हो उन्माद का।।
भगवती देवी अहिंसा का अमर आभार हो।। एक०।।

महावीराष्टक स्तोत्रम्

श्रीमान् पं० वंशीधर जी व्याकरणार्य

(१)

य:कल्याणकरो मतास्त्रिजगतो लोकश्च यं सेवते।
येनाकारि मनोभवो गतमदो यस्मै भवः क्रुध्यति।।
यस्मान्मोहमहाभटोऽपि विगतो यस्य प्रिया मुक्तिमा।
यस्मिन्स्नेहगतः स नो भवति कः कान्ताकटाऽऽक्षाऽक्षतः।।

(२)

यस्याधृष्यमतं मतं जनहितं सद्धर्मषाणोपलम्।
नम्रीभूत-सुरेन्द्रवृन्द-मुकुटे पादच्छलात्संगतम्।।
भव्यैरप्यनुगीय-मान-यशसा व्याक्रान्तलोकत्रयम्।
यस्माद्योऽस्ति नयार्पणादधदनेकान्ताऽकटाऽऽक्षाऽक्षतः।।

(३)

यस्य प्रेङ्खदखर्व-कान्तिमणिभिः प्रोद्योतितामातता—
मास्थानावनिभागतैर्दिविरतैः प्रक्रान्त—तूर्यत्रिकाम्।।
तामालोक्य भवांगभोगनिरता मिथ्यादृशोऽप्यादृताः।
सम्यक्त्वं विभवं भवन्ति कुनयैकान्ताऽऽकटाक्षाऽक्षताः।।

(४)

ये प्राक् त्रासमुपागता मतिहता वाण्याः कृपाण्याः परेऽ—
नीतिज्ञानलवोद्धता गतपथास्तत्त्वार्थके संगरे।।
निक्षिप्ताःसुनयप्रमाणभुवि ते चेतश्चमत्कारिणो।
येन ज्ञानसमाहिताः खलु कृताः कान्ताकटाक्षाऽक्षताः।।

(५)

यस्य प्रार्चन भक्तिचाञ्चितमना भेकोऽपि तत्कोपिना
दैवेन प्रहतोऽप्यभूदमरभू कान्ता कटाक्षाऽऽक्षता: ॥
तत् किं यस्य पदार्चने कृतधियः सामोदभावेन हि ।
जायन्ते भवयोषितां शिवरमा कान्ता: कटाक्षाऽक्षता: ॥

(६)

यस्याद्यं भ्रमरावलीव कमले भव्यावलीमन्दिरे ।
सम्फुल्लत्कमलावलीं परिकनद्दीपावलीं विन्दति ॥
चेतस्याप्त-मुदावलीति तु वरं चित्रं विचित्रं न्विद—
मेका कामवशाऽपरा भवति नो कान्ताकटाक्षाऽऽक्षता: ॥

(७)

वीरः सोऽस्तु मम प्रसन्न-मतये तं संगतोऽहं ततः ।
सूक्तं तेन हितं मतं जगदतो वीराय तस्मै नमः॥
अन्यो नास्ति ततः प्रियङ्कर इतस्तस्य स्मृतिर्मे हृदि ।
वीरे तत्र रतो भवान्ययमहं कान्ता कटाक्षाऽऽक्षतः ॥

(८)

वं-शौन्नत्य करोऽप्यसौ नरपतेः सिद्धार्थ कस्यात्मभूः ।
शी-लेनाधिकृता हितोऽपि तपसास्त्रेण प्रकृत् कर्मणाम् ॥
ध-न्यानामति विस्मयं विदधती पूर्वं तु पश्चात् प्रभो !
र-स्येयं कृतिरातनोतु क्रमनक् कान्ताऽकटाक्षाऽऽक्षतः ॥

—★—

दीप-अर्चना

(कविवर द्यानत जी)

करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की।

(१)

राग विना सव जग-जन तारे, द्वेष विना सव करम विदारे।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(२)

शील-धुरंधर शिव-तिय-भोगी, मन-वच-काय न कहिये योगी।
करौं आरती वर्द्धमान की पावापुर निरवान-थान की॥

(३)

रत्नत्रय-निधि परिगह-हारी, ज्ञान-सुधा-भोजन-व्रतधारी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(४)

लोक अलोक व्याप निज माहीं, सुखमय इंद्रिय-सुख-दुख नाहीं।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(५)

पंच कल्याणक-पूज्य विरागी, विमल दिगम्वर अंवर त्यागी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान थान की॥

(६)

गुन-मनि-भूपन-भूपितस्वामी, जगत उदास जगत्त्रय स्वामी।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

(७)

कहैं कहाँ लौं तुम सव जानौ, 'द्यानत' को अभिलाप प्रमानौं।
करौं आरती वर्द्धमान की, पावापुर निरवान-थान की॥

—★—

महावीर-वन्दना

पंडित प्रवर अशाधरसूरि

सन्मति-जिनपं सरसिज-वदनं,
संजनिताखिल - कर्मक - मथनं ।
पद्म सरोवर मध्य—गजेन्द्रं,
पावापुरि महावीर जिनेन्द्रं ।।१।।
वीर भवोदधि—पारोत्तारं,
मुक्ति श्री वधु-नगर-विहारं ।
द्विद्वादिशकं — तीर्थं पवित्रं,
जन्माभिषकृत — निर्मलगात्रं ।।२।।
वर्धमान नामारव्य-विशालं,
मान मान-लक्षण दश तालं ।
शत्रु विमथ न विकट भट-वीरं,
इष्टैश्वर्यं धुरी कृत दूरं ।।३।।
कुण्डलपुरि सिद्धार्थ भूपाल—
तत्पत्नी प्रियकारिणि वालं ।
तत्कुल नलिन विकाशित हंसं,
घात पुरो घातिक विध्वसं ।।४।।
ज्ञान-दिवाकर लोकालोकम्—
निर्जित कर्मा-राति विशोकं ।
वालत्वे संयम सु - ग्रहीतं,
मोह महानल मथन विनीतं ।।५।।

मानवता के उद्धारकः भगवान महावीर

आओ आओ सुनो कहानी मानवता उत्थान की।
सत्य-अहिंसा के अवतारी, महावीर भगवान की।

परिस्थिति

मानव-मानव मध्य वढ़ रही भेद भाव की खाई थी।
पशुओं में थी त्राहि त्राहि, हिंसा से भू थर्राई थी।।
धर्म नाम पर द्वेष दम्भ, आडम्वर की वन आई थी।
स्वार्थ, असत्य, अनैतिकता से, मानवता मुरझाई थी।। आओ०

अवतरण

प्रान्त विहार पुरी वैशाली, राजा थे सिद्धार्थ सुजान।
चैत सुदी तेरस को माता त्रिशला से उपजे गुणखान।।
श्री वृद्धि : सर्वत्र हुई थी, जनता ने सुख पाये थे।
इससे जग में त्रिशला-नंदन वर्द्धमान कहलाये थे।।आओ०
मदोन्मत्त हाथी के मद को, चूर 'वीर' पद प्राप्त किया।
दर्शन से शंकाये मिट गई, मुनि जन 'सन्मति' नाम दिया।।
तरु लिपटे विषधर को वश कर, महावीर कहलाये थे।
सर्व हितैपी शान्तवीर के, सव ने ही गुण गाये थे।। आओ०

वैराग्य और ज्ञान प्राप्ति

भोग-रोग, सम्पद् विपत्ति है, जव यह भाव समाया था।
कामजयी ने तीस वर्प में दीक्षा को अपनाया था।।
सर्व परिग्रह त्याग, वर्प वारह, वन वीच विताये थे।
मोहादिक कर नष्ट, सर्व ज्ञाता अरिहंत कहाये थे।। आओ०

महावीरश्री का उपदेश

मानव वने महामानव, अव तीर्थंकर पद पाया था।
मानवता उद्धार हेतु, तव यह सन्देश सुनाया था।।

अहिंसा

"स्वयं जियो जीने दो सव को" इससे वढ़कर धर्म नहीं।
स्वार्थ हेतु पर को दुख देने से वढ़कर दुष्कर्म नहीं।। आओ०
मद्य-मांस अण्डा न कभी मानव भोजन हो सकता है।
शुद्ध निरामिष भोजन से वढ़ती सच्ची सात्विकता है।।
पर दुख-सुख को अपना समझो, प्राणि-साम्य मन में लाओ
इन्द्रिय-विषय-वासना तज, संयम-मय जीवन अपनाओ।। आओ०
यज्ञ-हवन-वलि-पूजन हित भी, प्राणि सताना हिंसा है।
झूठ वोल विश्वासघात कर, काम वनाना हिंसा है।।
चोरी ठगी शक्ति से धन हर, हृदय दुखाना हिंसा है।
कामुकता, अश्लील आचरण कलुष भावना हिंसा है।। आओ०

अपरिग्रह

संग्रह वृत्ति पाप है, इससे जनता वस्तु न पाती हैं।
कमी, छिपाव, अभाव, मिलावट, आराजकता छाती है।।
स्वयं वस्तुएँ परिमित रखकर औरों को भी जाने दो।
आवश्यक सामग्री पाकर, सवको काम चलाने दो।। आओ०

अनेकान्त

सभी वस्तुओं में अनेक गुण, जग में पाये जाते हैं।
भिन्न दृष्टि कोणों से जन, उनको कहकर वतलाते हैं।।
अतः पराये दृष्टि कोण पर, वन समुदार विचार करो।
पक्षपात तज, अनेकान्त मय पूर्ण सत्य स्वीकार करो।।

स्व-पुरषार्थ

अपने जीवन का हर प्राणी, आप स्वयं निर्माता है ।
जैसा करता, वैसा भरता, कोई न सुख-दुख दाता है ।।
आत्म शक्ति से, वन्ध मुक्ति का श्रद्धामय पौरुष लाओ ।
भौतिकता की चकाचौंध में आतम को मत विसराओ ।। आओ०

परमात्मा-पद प्राप्ति

सभी आत्माएँ समान है, शक्ति रूप से भेद नहीं ।
नर-नारक-पशु-देव, कर्मकृत योनि आत्म के भेद नहीं ।।
तप से कर्म दूर कर, जो नर निर्विकार हो जाता है ।
शुद्ध सिद्ध भगवान् जिनेन्द्र, प्रभु परमात्म कहलाता है ।।

महा परि निर्वाण

तीस वर्ष उपदेश सुना, अगणित जीवों को ज्ञान दिया ।
कार्तिक कृष्ण अमावस्या, तन त्याग प्राप्त निर्वाण किया ।।
ढ़ाई हजार वर्ष से जन-मन वीर-चरण आराधक हैं ।
महावीर सिद्धान्त पूर्णतः विश्व-शान्ति के साधक हैं ।। आओ०
रायचन्द जी ने वापू को वीर सँदेश सुनाया था ।
सत्य-अंहिसा से वापू ने हिन्द स्वतंत्र कराया था ।।
उन्हीं वीर के आगे 'कौशल' सव मिल शीश झुकायें हम ।
आत्म शक्ति को पहिचानें, सच्चे मानव वन जायें हम ।। आओ०

जिनकी

परमशांत सौम्यमुद्रा

भव्य जीवों के स्वानुभव में

अनुकूल निमित्त बनती है

तथा

जिनकी दिव्यध्वनि खिरती तो है

उनके वचन योग से

परन्तु

सौभाग्य जगाती है भव्य जीवों का

ऐसे

१००८ श्री वीर प्रभु के चरणों में

शत शत अभिनन्दन

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

नानकचन्द्र जैन एवं राकेशकुमार जैन

प्रोमपट ट्राँसपोर्ट्स

१२७२ वकीलपुरा देहली-११०००६

जिन्होंने

जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाकर

स्वयं भवसागर को पार किया

तथा

जो समस्त संसारी जीवों को पार कराने के लिए

सुदृढ़ नौका के समान

पवित्र माध्यम बने हुए हैं

ऐसे

महावीर स्वामी के चरणों में हमारा कोटि २ नमन

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

(१) **मदनलाल जैन**

४७१६ डिप्टीगंज

देहली-११०००६

(२) महावीर बैंगल स्टोर

४७३३, डिप्टीगंज

देहली-११०००६

जिन्होंने
परम शुक्ल ध्यान की प्रचंड अग्नि से
कर्म काष्ठ को जलाकर भस्म कर दिया है
तथा
जिनके केवलज्ञान रूपी किरणों से समस्त लोकालोक
आलोकित हो रहा है
वे सर्वज्ञ भगवान महावीर
हमारे हृदय में ज्ञान की विमल ज्योति प्रकट करें
परम-पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव-भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

(१) **महावीर प्रसाद जैन**
मेनेजिंग डाइरेक्टर
एलाइड इलैक्ट्रिक एण्ड हार्डवेयर इन्डस्ट्रीज (प्रा०) लि०
मोतीया खान, नई देहली-११००५५
फोन ५११७७२/५१७८३२

(२) राजस्थान इन्डस्ट्रियल एण्ड सर्विस ब्यूरो,
इन्डस्ट्रियल इस्टेट—जयपुर साउथ-३०२००१
फोन० ६४५८

जिनका जीवन

सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चरित्र का

शरच्चन्द्र है

जिनकी मुक्ति

जगत के जीवों को सहस्ररश्मि वनकर

पथ प्रशस्त किया करती है

जिनकी

परम शान्त मुद्रा से वीतरागता झलकती है

उन सन्मति के

श्री चरणों में कोटि कोटि है

नमन हमारा

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

प्रकाशचन्द समैया वजाज

मु० पो० कवरई (जिला हम्मीरपुर) उ० प्र०

त्रिशलानन्दन

के

चरणों में शत-शत वन्दन,

काट दिये हैं स्वयं जिन्होंने,

कर्म-जाल के दृढ़तम वन्धन,

जिनका जीवन ।

गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मुक्ति का सुरभित चन्दन,

उनके ही इस रजत-शतक पर,

पंचम गति की प्राप्ति हेतु है,

मोक्ष लक्ष्मी का अभिनन्दन ।

आओ घृत के दीप जलाएँ,

धरती पर अमृत बरसाएँ,

मिट जाये भव-भव का क्रन्दन,

महावीर हे त्रिशलानन्दन ।

परम पुनीत पच्चीसवें शतक पर भाव भीनी विनयाञ्जलि

अर्पयिता :—

परमानंद लखमीचंद जैन सराफ

गौरमूर्ति—सागर (म० प्र०)

ज्योतिर्मय महावीर (पद्य काव्य

श्री रमेश सोनी मधुकर खुरई, (सागर) म० प्र०

(१)

पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का।
मानवता के हृदय-गगन में, सूरज चमका ज्ञान का।।
पुण्य-दिवस के प्रथम प्रहर में, मेरा प्रथम प्रणाम लो।
दर्शन की प्यासी अँखियों का, बढ़ कर आँचल थाम लो।।

(२)

पद-रज धोने मचल पड़ी है, पलकों की ये निर्झरणी।
अक्षत पूजन करने निकली, श्वासों की पावन तरणी।।
हर तिनका वंशी सा गूंजा, फल था दया-निधान का।
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का।।

(३)

कुसुम-कुंज में नव निकुंज में, चित्रित है तेरी भाषा।
मौन लिपी से समझाई थी, दया धर्म की परिभाषा।।

अमृत-वचनों के अर्थों ने, दैन्य-दाह-तम दूर किया।
वेदों की हर मौन ऋचा को, वशीकरण सा मंत्र दिया॥
काल-भाल पर चमके ऐसे, तारा शुक्र वितान का॥
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(४)

पाप और पाखण्ड की ज्वाला, नाच रही थी हर घर में।
घृणा द्वेष की दुमुँही नागिन, जहर उगलती थी नर में॥
वीत गये दिन पक्ष मास के, वर्ष अनेकों वीत चले।
लालच-लिप्सा वनी कामिनी, दया धर्म घट रीत चले॥
एक तिलस्मी चमत्कार का, नाटक हुआ विधान का।
पुण्य दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(५)

तव ही त्रिशला की आँखों में, सोलह सपन श्रृंगार हुआ।
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी को, महावीर अवतार हुआ॥
किन्नरियाँ गन्धर्व देव गण, हर्षित थे मन ही मन में।
राजा श्री सिद्धार्थ जनकवर, डूब गये सम्मोहन में॥
मात-पिता की गोद भर गई, सुख पाया सन्तान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(६)

रति अनंग मोहित हो वैठे, चितवन पर किलकारी पर।
इन्द्राणी का तन-मन डोला, रुनझुन-रुनझुन ताली पर॥
रीझ गई केशर की क्यारी, खिली मंजरी तानों पर।
सपने सब साकार हो गये, पुष्पक तीर कमानों पर॥
धर्म-ध्वजा ऐसी लहराई, बादल उड़े वितान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(७)

आल्हादित हो उठा हर्ष था, वंशी के मधु स्वर गूंजे।
मादक मनुहारों की धुन पर, गले मिले सब इक दूजे॥
पीके फूटे हरे प्यार के, मौसम ने रस बरसाया।
धरती के पाँवों में घुंघरू, पवन बाँध कर मुसकाया॥
खुशियाँ ऐसी डोल रही थीं, ज्यों बेड़ा जलयान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(८)

कल्पवृक्ष ने फूल विखेरे, स्वागत किया वहारों से।
नभ में फाग सितारे खेले, उनके पलक इशारों से॥
किसी होंठ पर वजी वंसरी, किसी हाथ से वीन वजी।
चंदन चर्चित कमल ज्योति से, हर दुल्हिन की मांग सजी॥

महका गुंजन, झूमा नंदन, रस बरसा मधुपान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(९)

कंगना खनके बिंदिया दमके, सुध-बुध भूली तरुणाई।
मगन हुआ आनन्द द्वार पर, भटक रही थी अरुणाई॥
सजी दूधिया राहें जगमग, चमका ज्यों नभ का दर्पन।
बिखरी बूँदें काँच सरीखी, चकराया था अपनापन॥
बजी नौबतें शुभ शहनाई, मौसम आया दान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१०)

श्रद्धा के पावन पनघट पर, यश की राधा मुस्काई।
हिरनी सी भोली पलकों पर, स्वयं कल्पना भरमाई॥
मंगल शब्द गीत शहनाई, गूंज उठा स्वर नारों का।
जैसे बचपन लौट पड़ा हो, खुशियों का त्योहारों का॥
मंत्र मुग्ध हो गई दिशायें, जादू था मुस्कान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(११)

ऋतुओं ने अभिषेक किया, सावन ने झूले डाल दिये।
चंदा पलने में आ बैठा, रवि ने झूमर बाँध दिये॥

मलय-पवन दासी वन आई, मणि मंडित सिरहाने की।
मंगल-कलश रखा सखियों ने, लोरी गाई सुलाने की।।
फूली मेंहदी, हँसती चंपा, पौधा गाये धान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का।।

(१२)

पलक वनी पूजा की थाली, हर आँचल पुचकार उठा।
ममता झलक पड़ी आँखों से, त्रिभुवन का सब प्यार लुटा।।
कजरी गाती, रस झलकाती, करुणा द्वारे तक आई।
दर्शन की प्यासी अभिलाषा, छंद वंदना के लाई।।
तूफानों में दीप जला फिर, मानव के उत्थान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का।।

(१३)

खग वृन्दों ने छेड़ी सरगम, पंख हिला सम्मान किया।
पुष्पों से लद गई लतायें, जड़-चेतन ने ध्यान किया।।
झिलमिल कुमकुम थाल सजाकर, किरन कामिनी मुस्काई।
हर उमंग झूला सी झूली, हवा हिमानी गदराई।।
वरदानी हाथों से मिलता, फल गंगा स्नान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का।।

(१४)

झरनों सी साँसें लहराईं, नशा चढ़ा था जन-जन में।
इन्द्र स्वयं हर्षित हो बैठे, हीरे बरसे आँगन में॥
मान सरोवर सोहर गाती, कलकल की स्वर लहरी में।
मुखड़े ऐसे दमक रहे थे, शीशा ज्यों दोपहरी में॥
तेज देखकर थम जाता था, चढ़ता सूर्य विहान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१५)

भू ने माथा रखा पगों पर, अम्वर ने की आरती।
चौक पुरे हर देहरी आँगन, धन्य हो गई भारती॥
सागर की नव वधुएँ सजकर, चरण चूमने को आईं।
शैल हिमालय की वेटी फिर, दूध धुला दर्पण लाईं॥
सव से अच्छा कोहनूर था, वह हीरे की खान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(१६)

मदोन्मत्त हाथी था जिनका, एक खिलौना वचपन का।
तक्षक नाग किया वश में था, खेल हुआ था छुटपन का॥

जिनके पलक इशारों से ही, शीश झुका अभिमान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२२)

कठिन तपस्या बारह वर्षी, दिव्य सुधा-रस भर लाई।
बीत गये ब्यालीस वर्ष जब, ज्ञान ज्योति दौड़ी आई॥
कर्मवाद और साम्यवाद का, हँस कर रिश्ता जोड़ दिया।
आकिंचन्य दिया दुनियां को, जग से मुखड़ा मोड़ लिया॥
कला-कीर्ति की वीणा पर था, मिटा तिमिर अज्ञान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२३)

सत्यं और शिवं को लेकर, सुन्दर स्वर्णिम कलश गढ़े।
वीतरागता के सम्बल से, स्याद्वाद के वचन पढ़े॥
उज्ज्वल शीतल शांत मधुर, चिन्तन दर्शन को दिखलाया।
आदि अन्त की भूल मिटाकर, प्रतिशोधों को ठुकराया॥
काम-क्रोध का पहरा टूटा, सुख जाना सम्मान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का॥

(२४)

वैशाली गणतंत्र मध्य में, भाग्य जगे कुंड ग्राम के।
घर बैठे ही चरण मिल गये, उनको तीरथ धाम के॥

वदल दिया इतिहास धरा का, महाकाल का वल रोका।
नफरत की काली आंधी फिर, दे न सकी जग को धोखा ॥
चुटकी भर शक्ती को लेकर, रथ निकला विज्ञान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

(२५)

भूखण्ड बिछा आकाश ओढ़, अक्षर के दीपक जला गये।
दीपावलि को पावा पुर में, ज्ञान ज्योति में समा गये ॥
हुई कृतार्थ भूमि भारत की, इनकी परछाईं छूकर।
अक्षय अटल अमर होगा वह, इनके वचनामृत सुन कर ॥
शंख नाद में स्वर गूंजेगा, उनके गौरव गान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

(२६)

तेरी छवि-छाया हिल मिल कर, प्राणों में चुभ-चुभ जाती।
मुखरित कण्ठों की मणिमाला, हृदय-हार वन लहराती ॥
जीवित रहे धरा पर प्राणी, ऐसा शब्द शृङ्गार किया।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित से, जन हित का उद्धार किया ॥
दीनों का रखवाला था वह, साथी था अनजान का।
पुण्य-दिवस हम मना रहे हैं, महावीर भगवान का ॥

सच पूँछो तो समय आगया जीवों के उद्धार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वाँग मिटा संसार का ॥

४

प्रत्युत्पन्न बुद्धि बालक की, वीरोचित क्रीड़ाएँ थीं।
एक बार का हाल सुनायें, जिसकी वहु चर्चायें थीं ॥
खेल खेल में वर्द्धमान भी, समवयस्क सह वृंक्ष चढ़े।
नागराज भी उसी वृक्ष पर, आकर तव ही लिपट पड़े ॥
फण पर पग रख उतर पड़े पर असर नहीं फुंकार का
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वांग मिटा संसार का

५

निर्मद हो पथ वदल लिये, थे जहरीले उद्गारों ने।
हर्षित हो जय वोली मिलकर, साथी राजकुमारों ने ॥
इसी तरह जव एक वार, गजराज हुआ मतवाला था।
गजशाला को तोड़-फोड़, विप्लव प्रचंड कर डाला था ॥
सभी लोग घवड़ा कर भागे, धैर्य अटूट कुमार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वांग मिटा संसार का ॥

६

धीर प्रशान्त वीर सन्मति का, था सुयुक्ति से मन टंकित।
क्लिष्ट समस्याओं का हल वे, कर देते थे निःशंकित ॥
श्री वर्द्धमान की प्रतिभा भी, दिन दूनी रात चौगुनी हुई।
या प्रश्नों की वौछार स्वयं, उत्तर की सिद्ध लेखनी हुई ॥
शंकाएँ सव समाधान थीं प्रश्न न अस्वीकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, स्वांग मिटा संसार का ॥

७

ज्यों ज्यों किशोर अति वीर हुए, त्यों चिंतन प्रिय होते जाते।
पटु तर्क शास्त्री भी उनके, तर्कों को सुनकर सकुचाते ॥

अवलोक ज्ञानमत्ता उनकी, जिज्ञासु तत्त्व चकरा जाते।
तत्त्वों की व्याख्या सुन सुन कर, अपने को शिष्य बना पाते ॥
निराकार आत्मा संबल थी, उनकी देहाकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ॥

८

हाँ! समवयस्क ने एक बार, माँ से पूछा "श्री वर्द्धमान"।
हैं कहाँ? शीघ्र उत्तर पाया, उत्तर मंजिल पर विद्यमान ॥
जब ऊपर जाकर देखा तो, फिर वहाँ नहीं उनको पाया।
तत्रस्थित पितु श्री से पूछा, उनसे तब नीचे बतलाया ॥
ऊपर नीचे पता नहीं था असमंजस के द्वार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ॥

९

साथी बोला तुम कहाँ छिपे? चिंतन की मुद्रा में बैठे।
सातों मंजिल में खोजा पर, तुम किस मंजिल में स्थित थे?
मां से पूछा क्यों नहीं मित्र? यों वर्द्धमान से प्रश्न किया।
साथी ने उत्तर दिया तभी इस पूछताँछ ने भुला दिया ॥
अर्थ न कुछ भी ज्ञात हुआ, ऊपर नीचे व्यवहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ॥

१०

तब वर्द्धमान ने कहा मित्र, हैं दोनों ही के कथ्य सत्य।
माँ से ऊपर पितु से नीचे सापेक्षतया है यही तथ्य ॥
यदि वीर चाहते तो उदात्त, क्षत्रिय राजा बन सकते थे।
जनता पर शासन कर विलास, भोगों में भी रम सकते थे ॥
आनन्द अतीन्द्रिय खोजी को है समय न उपसंहार का।
आनंदित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का ॥

११

वह युग हिंसामय वना हुआ, था धर्मनाम वदनाम वहुत।
पशुवलि नरमेघों को करना, ही यज्ञों का था काम वहुत॥
धर्मों के ठेकेदार सभी सुरपुर का टिकट वांटते थे।
हिंसा के ताण्डव नृत्य सत्य, का मिलकर गला काटते थे॥
वातावरण वनाया जिसने शांति अहिंसा प्यार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

१२

हो जाए अहिंसायुक्त विश्व, है सन्मति का संदेश यही।
तज मोह राग द्वेषादिक को, धारे विराग मय वेष सही॥
अतएव त्याग गृहस्थावस्था, वे ज्योति पुंज के रूप वने।
निज शान्ति अहिंसा के सुन्दर तम सत्यं शिवं अनूप वने॥
माया मोह न रोक सका था उनको घर परिवार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

१३

यौवन ने पाँसे फेंके थे, रंगीनी के अल्हड़ता के।
पर पाँव फिसलते भी कैसे, उन महावीर की दृढ़ता के॥
वंधन की तोड़ी वाधाएँ, छोड़ी सव ही रंगरेलियां।
इन्द्रिय निग्रह के निश्चय में, वे भूल गये अठखेलियां॥
नहीं मुक्ति श्री अभिलाषी को कार्य प्रणय व्यापार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का॥

१४

आत्म तत्त्व की सत्य खोज में, तीस वसंत व्यतीत हुए।
सभी लोक व्यवहार जगत के नश्वर उन्हें प्रतीत हुए॥
नग्न दिगम्वर हो निर्जन में, आत्म-साधना रत रहते।
वे मौन विवेकी रह करके, उपसर्ग परीषह सव सहते॥

वाहों का तकिया था उनका, चादर गगनाधार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का॥

१६

आत्म चिंतवन मुख्य ध्येय था न्हवन और दन्तौन विहीन।
शीत ग्रीष्म वर्षादिक ऋतुएँ करती उन्हें अधिक तल्लीन॥
सहज सौम्य स्वाभाविकता का, वन पशुओं पर पड़ा प्रभाव।
परम अहिंसक तप ने पूरे जन्म जन्म वैरों के घाव॥
था वना तपोवन शेर-गाय सव के स्वच्छंद विहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का॥

१६

कभी कदाचित् भोजनार्थ वे, दृढ़ प्रतिज्ञ ईर्या-पथ से।
चल कर खड़े खड़े कर लेते, शुद्धाहार महाव्रत से॥
थी दासी एक अभागिन सी, जो कर्मों के फल भोग रही।
जनक और जननी वियोग में, जेलों में दिन काट रही॥
नाम सुपरिचित चंदनवाला चेटक सुता दुलार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

१७

था दोष यही केवल उसका, थी रूप रंग में रमावती।
स्वामिनि थी उसकी वदसूरत, चंदन दासी थी रूपमती॥
प्रभु महाश्रमण श्री महावीर ने उसके घरआहार लिया।
उस चन्दनवाला सी पतिता का युग युग को उद्धार किया॥
था द्वादश तप द्वादश वर्षों, दृढ़ निश्चय के व्यवहारका।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है, ढोंग मिटा संसार का॥

१८

शुभ वयस् व्यालिस होने पर, वे वीतराग सर्वज्ञ वने।
कर राग-द्वेष पर विजय प्राप्त, वे सच्चे स्थित प्रज्ञ वने॥

जंभिया ग्राम तट ऋजुकला, पर ज्यों ही वे ध्यानस्थ हुए।
त्यों शाल वृक्ष के नीचे वे केवल ज्ञानी आत्मस्थ हुए ॥
वैशाखी शुक्ला दशमी का था धन्य दिवस जयकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ॥

१६

वे पूर्ण वीतरागी होने से, जिनवर श्री अरिहन्त हुए।
तीर्थङ्कर पुण्योदयी प्रकृति, से समवशरण भगवंत हुए ॥
तत्त्वोपदेश भूमंडल में देते थे चरण विहारी वे।
नय अनेकान्त को समझाते थे रत्नत्रय के धारी वे ॥
था समवशरण में गूंज रहा अति दिव्यनाद ऊँकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ॥

२०

प्रारंभ हुए धर्मोपदेश कल्याणमयी सर्वोदय के।
वाणी को सुनकर सभी जीव, थे आतुर निज ज्ञानोदय के ॥
षड् द्रव्य सप्त हैं तत्व यहां उनमें आत्मा को पहिचानो।
उसमें ही रमना मोक्ष अमर पहिले उसको मानों जानो ॥
है धर्म एक पर निर्देशन होता है विविध प्रकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ॥

२१

पर्याय वदलती रहती है, क्षण क्षण उत्पन्न नई होती।
मिलती न कभी भी आपस में प्रत्युत् अतीत में ही खोती ॥
मत देखो गत पर्यायों को, सोचो मत भावी पर्यायें।
हैं स्वयं अरे परिपूर्ण द्रव्य, स्वाधीन सहज सव आत्मायें ॥
है द्रव्य यथावत् स्वाभाविक, वैभाविक विविध प्रकार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का ॥

२२

उसको ही ज्यों का त्यों देखो, जानो मानो वस टिके रहो।
जो वर्तमान सो वर्द्धमान वस इसी प्राप्ति हित विके रहो॥
जिस तरह यहां पर वहुरूपिया, निज वसन त्याग कर स्वांग धरे।
उस तरह आत्मा तन तज कर कर्मानुसार भव भ्रमण करे॥
है मोक्ष मार्ग सम्यग्दर्शन ही सम्यक्ज्ञानाचार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२३

इस देह त्याग से सुनो अरे यह नश्वर तन मिट जाता है।
मोही चेतन के साथ-साथ वस पुण्य-पाप ही जाता है॥
चौरासी लक्ष योनियों में यह आत्मा चलनी वनी रही।
फिर जन्म-मरण के चक्कर में चारों गतियों में सनी रही॥
यदि वात गुनो मेरे भक्तों, तो नाम न लो संसार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२४

है यह अनादि से स्वयं सिद्ध, इसका न कोई निर्माता है।
है विश्व रचयिता स्वयं अज्ञ, ज्ञाता तो इसे मिटाता है॥
यदि सचमुच ही सच्चे सुख के, तुम वने हुए अभिलाषी हो।
तो छोड़ो लौकिक सुखाभास, तुम निजानन्द अविनाशी हो।
इस गुण समुद्र अपने चेतन में लय हो क्षणिक विकार का॥
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२५

इस प्रकार श्री वीर प्रभू ने, स्वातन्त्र्य मन्त्र उद्घोष किया।
साम्यवाद के साथ साथ ही, रत्नत्रय का कोष दिया॥
निर्वाण काल आया प्रभु का, तव पावन पर्व प्रसिद्ध हुए।
फिर अष्ट कर्म कर नष्ट वीर, अर्हत् से शिव सुख सिद्ध हुए॥

यों वर्ष वहत्तर रहे वताते पथ निश्चय व्यवहार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२६

शुभ दीपावलि का दिन पावन, निर्वाण दिवस पावापुर में।
सम्पन्न हुआ देवों द्वारा हम दीप जलाते घर-घर में॥
है हुआ हमारा विरह काल ढ़ाई हजार इन वर्षों का।
पर अव सुयोग मिल पाया है, हमको अपने उत्कर्षों का॥
यह युग युग अमर रहेगा मंगल गायन धर्माधार का।
आनन्दित त्रैलोक्य हुआ है ढोंग मिटा संसार का॥

२७

मुझ में तो किंचित् शक्ति नहीं पर भाव भक्ति से आये हैं।
जिनवर से दृष्टि सुदृष्टि हुई अतएव वीर गुण गाये हैं॥

—०—

समन्वय

निश्चय की मंजिल पाने को—
संतों ने जो पंथ वनाया।
निश्चयाग्र व्यवहार्य कार्य—
वह व्यावहारिक मार्ग कहाया॥

मत लड़ो पकड़ कर एक पक्ष—
यह जैन धर्म समझौता है।
हम वनें समन्वयवादी अव—
यह अनेकान्त का न्यौता है॥

—×—

उद्‌बोधन

श्री डा० रामकुमार जी जैन
एम० वी० वी० एस खुरई

तव चरणों की वाट जोहता, धरती का हर छोर रे।
तप्त-धरा के तृषित कणों पर, बरस पड़ो घनघोर रे॥
ताल-तलैयों के अधरों पर प्यास रे!
शोक मनाती देखो नदी उदास रे!!
प्यासे पंछी की आँखों में सांस तोड़ती आस रे!
सूखे पनघट के घाटों पर वीरानों का वास रे!!
पी. पी. पी रट रहा पपीहा प्यासा वन का मोर रे!!!

हो, ममता के रक्षक तुम, हो सुहाग के रखवारे !
वीतराग तुम वैरागी तुम, पर स्वारथ के मतवारे !!
बूढ़ों की लाठी हो तुम, नयन हीन के नयना रे !
वधिर जनों के कान तुम्हीं हो गूंगों के तुम वयना रे !!
क्रूर काल के द्वार मचादे, नए जन को शोर रे !!!

चमक तड़ित सम 'पीर-मेघ' को चीर रे !
अपने उर में ले-सोख धरा की पीर रे !!
अपनी छाती पर रोक काल के तीर रे !
जीवन के द्वारे पर खींचो युग की लखन लकीर रे !!
'जीवन-सीता' हर न पाये, छलिया रावण चोर रे !!!

घोर निराशा के तम में तूँ आशा ज्योति जगाता चल !
"मौतों के गलियारे" में तूँ जीवन-गीत सुनाता चल !!
हर बुझते जीवन-दीपक की, वाती को उकसाता चल !
हर जीवन पथ भ्रष्ट पथिक को, सम्यक् राह सुझाता चल!!
'यम के पाशों' घुटती-साँसों का मुसका हर पोर रे !!!

लोभों के व्यूहों में फँस कर, अपनी राह न खोना रे !
सोने की जगमग में चुंधिया अपनी आव न खोना रे !!
सुख के विरवा रोपन हारे, विष के वीज न वोना रे !
जीवन-ज्योति जगाने वाले, तम के गेह न सोना रे !!
सोयी धरती के पूरव में, चमको वन कर भोर रे !!!

तव चरणों की वाट जोहता धरती का हर छोर रे !
तप्त धरा के तृपित कणों पर, वरस पड़ो घनघोर रे !!

वे महान थे वर्द्धमान थे
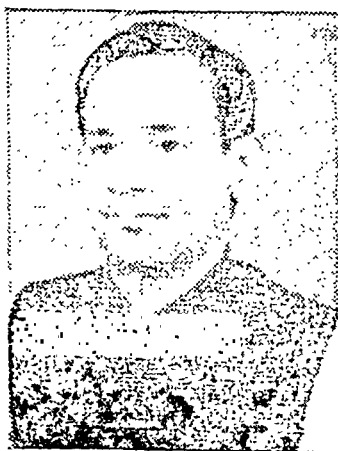
श्री शीलचन्द्र जी चौधरी 'शील'
खुरई (सागर) म० प्र०

सन्मति का व्यक्तित्व काल क्या कभी बाँध सकता है ?
महावीर का चिंतन जग की परिधि लाँघ सकता है।
यावच्चन्द्र दिवाकर नभ में ज्ञानालोक विखरता।
उनसे प्रति विम्वित होकर ही कवि का भाव निखरता ॥१॥

वर्ग विहीन सृष्टि मानव की महावीर दिखलाते।
अर्थनीति की मर्यादा को आवश्यक बतलाते॥
यह युग-युग का चिन्तन एवं निष्कर्षों का मंथन।
सत्येश्वर का सोना है जो सर्वोदय का कंचन ॥२॥

जाने में या अनजाने में महावीर का चिन्तन।
विश्व निकट लाया करता आचार-विचारों का प्रण॥
यह आचार संहिता उनकी स्वयं सफल होती है।
जो तिर्यंच नर नरकासुर के पाप सकल धोती है ॥३॥

सत्यमूर्ति थे ज्ञानमूर्ति थे, पौरुष भी वे मूर्तिमान थे।
वे सन्मति थे महावीर थे, तीन लोक में वे महान थे॥
कालजयी थे अतः स्वयं ही, भूत भविष्यत् वर्तमान थे।
हीयमान को वर्द्धमान करने वाले वे वर्द्धमान थे॥४॥

—०—

दर्शन-वोध

श्री मदन श्रीवास्तव
सेन्ट्रल वैंक ऑफ इण्डिया (खुरई) म० प्र०

सलिल की वूंद
मिल कर
जिस जगह
वन जाती है मोती,
वही स्थल
इस सद्उद्देश्य
का आरम्भ है
सभी दर्शन
जहाँ जुड़ जाते हैं,
दर्शन से जीवन के
महत्तम

जैन दर्शन का
वही स्तम्भ है।
हो जिसमे वीरता
संसार में वह
वीर है
पर अहिंसा
सत्य-शिव-सौन्दर्य
का जिसमें
समन्वय हो
वह निःसन्देह
जग स्तुत्य

महावीर है

—०—

मेरा नमन स्वीकार हो

श्री नारायण 'परदेशी' सम्पादक 'बुजन'
पो० बा० नं० ६ खुरई (जिला सागर) म० प्र०

करुणा के 'नीरद'
महावीर ने—
मानवता को, दुराचार की ज्वाला में धधकते देख !
सांसारिक—सुखों का 'परित्याग' कर !!
व्याप्त-दुराचार उन्मूलन के लिए—
जीवन-बलिदान की प्रतिज्ञा कर,
त्याग के मार्ग पर !?

क्षमता का 'कवच' पहिने ?
आत्मबल की 'लगाम' पकड़ें ??
विश्वास के 'अश्व' पर सवार हो,
जगत के 'प्रहारों' को 'वक्ष' दिखा—
मंजिल की ओर 'प्रस्थान' किया ??

सतत् बढ़ते रहे
मनन् करते रहे
. सुखों का, दुखों का
जनम का, मरण का
भव-मोक्ष, मार्ग का

अन्त में—
  बारह वर्षों के, 'अन्धकार' को !
    तपस्या के 'अवा' में,
      तपा डाला,—तन के 'तम' को ! !

कुन्दन बनकर,
  चकाचौंध किया 'अन्धकार' को !
    सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम की—मसालों से,
      प्रकाशित किया, दिशाओं को ! !

मोक्ष का 'लोभ' दिखा !
  मोक्ष का—'मार्ग' दिखा ! !
    मानवता का 'पाठ' सिखा !
      'अमर—ज्योति'
        'अमर—मंजिल' पाकर—
          अमर किया—नाम को
            हे !—"अमन"
              मेरा—नमन,—स्वीकार हो ! !

नमन

सिद्धों का चैतन्य नग्न है—
कर्म-पटल से निरावरण।
अरिहंतो का तन-मन नंगा—
गंगा से ज्यादा पावन ॥
हैं निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनित्रय—
नग्न सर्वथा आकिञ्चन।
इन्हीं पंच परमेष्ठि गणों के—
श्री चरणों में करूँ नमन ॥

भ० महावीर के भक्तों के प्रति

श्री दुर्गादीन जी श्रीवास्तव एडवोकेट 'वागी'
खुरई (सागर) म० प्र०

मैं जगती का जीव अकिंचन।
महा अपावन भ्रष्ट स्वभावी॥
हे सन्मति! सब भक्त तुम्हारे।
हुए वीर एवं मेधावी॥ १॥

भक्त वही जो जिन वाणी को।
वाणी में—जीवन में ढाले॥
उपदेशों के पहिले खुद ही।
उनको निज कृत्यों में पाले॥ २॥

जियो और जीने दो स्वर के।
वीतराग मय शाश्वत पथ पर॥
निर्विकार व्यापार रहित जो।
बने आत्म-हित नग्न दिगम्बर॥ ३॥

कमल कीच सदृश्य आत्मा।
लिप्त नहीं है जड़ शरीर से॥
महावीर हे भक्त! आप के।
दृश्यमान हों नीर-क्षीर से॥ ४॥

—०—

त्रिशला माँ की लोरी

(लोक-गीत)

कवि श्री फूलचन्द जी "पुष्पेन्दु" खुरई

तूँ तो सोजा वारे वीर ; तूँ तो सोजा प्यारे वीर।
वीर की वलहइयाँ लेती मोक्ष की प्राचीर॥
तूँ तो सोजा वारे वीर ? तूँ तो सोजा प्यारे वीर।
तुझे झुलाऊँ पालना में, तुझे खिलाऊँ गोद॥
तुझे सुलाऊँ कैसे ? तूँ तो जागृत आतम बोध।
तूँ तो चेतन की तस्वीर, तूँ तो सन्मति की तस्वीर॥
तस्वीर की गलवहियां लेती इन्द्रों की जागीर
तूँ तो सोजा प्यारे वीर ; तूँ तो सोजा वारे वीर।
काहे का है पालना ? काहे की डारी डोर।
घड़ी घड़ी जे वीरा पुलकें, होकर आत्म-विभोर॥
जिन्हों का है वज्राङ्ग शरीर, जिन्हों की रग-रग में है क्षीर।
क्षीर में किल्लोलें करता करुणा रस गंभीर।
तूँ तो सोजा वारे वीर ? तूँ तो सोजा प्यारे वीर।
रत्नत्रय का पालना है वीतराग की डोर।
सत्य अहिंसा के झूले में हिंसा को झकझोर॥
तूँ तो धरम धुरंधर धीर, सचमुच नगन दिगम्वर वीर।
वीर की वलहइयाँ लेती, शिव की मलय-समीर।
तूँ तो सोजा वारे वीर तूँ तो सोजा प्यारे वीर॥

—०—

श्री महावीर स्तुति

श्री सिंघई देवेन्द्रकुमार जी जयंत खुरई

मिल के गायें अपन, वीरा प्रभु के भजन, श्रावक सारे।
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

निश दिन तुम को भजें, पाप पाँचों तजें।
कर दया रे, पातकी को लगा दो किनारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

नंद सिद्धार्थ के प्राण प्यारे, मातु त्रिशला की आँखों के तारे।
राज्य-वैभव तजा, नग्न बाना सजा, संयम धारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

रुद्र ने घोर उपसर्ग ढाया, देवियों ने प्रभू को रिझाया।
किन्तु डोले नहीं, बैन बोले नही तप सम्हारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

राग की आग में जल रहे हैं, चाह की राह में चल रहे हैं।
भ्रष्ट आचार हैं, दुष्ट व्यवहार हैं, वे सहारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

मन को ऐसे मैं कब तक रमाऊँ, कौन विधि से तुम्हें नाथ ध्याऊँ।
जयन्त व्याकुल भया, चैन सारा गया, आए द्वारे ॥
मेटो मेटो जी कष्ट हमारे ॥

—०—

जड़ता से चैतन्य की ओर

नचयिता : रमेश रायत 'रंजन' खुरई (म० प्र०)

कुण्डग्राम की जन्मभूमि ने,
भारत माँ को धन्य किया।
त्रिशलानन्दन ने कण-कण को,
जड़ता से चैतन्य किया ॥१॥
जन्म जात इस अनासक्त ने,
जीवन को एकान्त किया।
पूर्ण वीतरागी वन करके,
अनेकान्त उपदेश दिया ॥२॥
पावापुर निर्वाण भूमि से,
स्वयं सिद्ध पद प्राप्त किया।
ज्ञानालोक विखेरा एव
मिथ्या तिमिर समाप्त किया ॥३॥

—x—

मुक्तक

राग रंग में लिप्त आत्मा, कहलाती संसारी।
पराधीनताओं से जकड़ी हुई लोक व्यवहारी ॥
किन्तु वीर ने स्वावलंवमव श्रद्धा ज्ञान चरित्र वनाया।
इसीलिए उनके चरणों पर तीनों लोकों की वलिहारी ॥
—डा० जुगलकिशोर गुप्ता 'युगल'

बढ़नें का बल पाया है

प्रीतमसिंह 'प्रीतम' शुक्ला वार्ड खुरई

अनदेखी है मंजिल मेरी, वीर-प्रभू का साया है।
साया से ही उर में मैंने, बढ़ने का बल पाया है।।

वढ़ना ही जीवन है मेरा
फूल खिलें, या पथ में कांटे
चाहे मौसम साथ रहे या—
चाहे तूफानों के चांटे।

कैसा भी मौसम हो, लेकिन मैंने कदम वढ़ाया है।
कदम-कदम पर कदमों में भी जोश हमेशा पाया है।।

दुनियां के कलख को जाना—
मैंने अपना ही पथ-दर्शन।
भूतकाल है जीवन-दर्पण—
आने वाले का अभिनन्दन।।

जब-जब भी की गलती मैंने, तव-तव शीश झुकाया है।
वर्तमान के शुभ कर्मों से, जीने का वल पाया है।।
अनदेखी है मंजिल मेरी, वीर प्रभू का साया है।
साया से ही उर में मैंने, वढ़ने का वल पाया है।।

—X—

दिव्या लोक

श्री छोटेलाल जी 'कँवल' (अन्त्यत)
खुरई (सागर) म० प्र०

धीर-वीर गंभीर हृदय था
महावीर युगवीर का
कण-कण देता है प्रश्नों का
उत्तर मलय समीर का

वैभव उनके चरण चूमने, सुर नगरी तज आया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है ।।

पुनः पुनः भव भाव-भ्रमण से
वीतराग जिन विलग हुए
इन्द्रिय निग्रह तय संयम में
ज्ञानानन्दी सजग हुएं।

अष्ट कर्म रिपु वशीभूत कर दुनिया को दिखलाया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है ।।

जगमग जगमग दीपमालिका,
केवल ज्ञान प्रतीक वनी।
परम अहिंसा धर्म प्रेरणा—
युग युगान्त की लीक वनी ।।

अनेकान्त के समझौते ने सारा विश्व रिझाया है।
'जियो और जीने दो' ने ही रची अलौकिक माया है ।।

—x—

विरोध भास स्तुति

रचयिता—श्री फूलचंद जी पुष्पेन्द्र खुरई

(१)

वीर में वीर-रस तो बहा ही नहीं—
जिन्दगी भर करुण-रस प्रवाहित रहा।
खून था ही नहीं, इसलिए दूध ही—
दूध उनकी रगों में निरन्तर बहा॥

(२)

युद्ध अथवा महायुद्ध देखे नहीं—
जीतने की उन्हें बात ही दूर थी।
शत्रुता थी नहीं एक भी जीव से—
शूरता-वीरता आदि मजबूर थी॥

(३)

सिंह के लक्षणों से समायुक्त थे—
पाशविकता नहीं किन्तु छू भी गई।
जंगलों में रहे जंगली थे नहीं—
नग्नता सभ्यता रूप परणित हुई॥

(४)

वीर गति मिल चुकी है महावीर को—
मिल चुकी है उन्हें आत्म स्वाधीनता।
वीर-शासन अहिंसामयी दिख रहा—
वीर चक्रांकिता सत्य-शालीनता॥
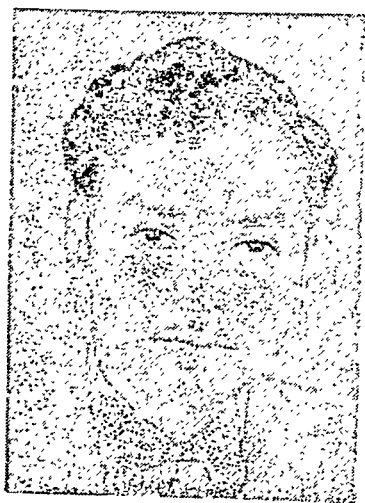
वीर वाणी को अन्तस में उतारो

श्री रमेश जैन 'अरुण'
व्याख्याता शास० उ० मा०
शाला सुरखी (सागर)
म० प्र०

महावीर तुम्हारी सत्य अहिंसा
हो गई कैद
इस एटमी युग में
शांति को निगल गई
क्रान्ति की निशाचरी
तुम्हारे अनुयायी गांधी को
मार दी गई गोली
अध्यात्मवाद की
हो रही नीलामी
लग रही जगह जगह बोली
झूठी आस्था के खड़े हो रहे महल
पाखंडों का लगाया जा रहा पलस्तर
वाणी भूपण के कुशल कारीगर

कर रहे पहल
हम सभी वाह वाह
की फैला रहे रोशनी
जो दूर के तम का
करती हरण
पर अन्तस् में सोये
तामस का
कहाँ होता अनावरण ?
मेरी पीढ़ी के लोग
तुम्हें क्या हो गया है ?
क्या तुम नहीं जानते
अपनी औक़ात ?
तुम्हारे हाथों में है
सूरज का उजाला
अंधेरे की कैसी सौगात ?
विवेक से काम लो
अन्धेरे के गीत
मत गाओ
'अरुण' का प्रकाश
यदि न दे सको
तो पावस अमां की निशा का तम
मत बाँटो
अपना चिरन्तन मूल्य
इस तरह् शून्य आकाश में
मत आँको
उठो, देखो
तुम्हारी, अगवानी को

प्रगति की दुल्हन
आरती लिए खड़ी है
प्रेम का दो सम्वल
आशीष की सुहाग विंदी दो
उसे स्वीकारो
मानव हो, मानव की तरह
मानव को निहारो
वीर की वाणी को
अन्तस् में उतारो
श्रद्धा से करो
नमन, वन्दन, अर्चन,
मिथ्यात्व को मारो

आत्मा का गणतंत्र

श्री फूलचन्द जी पुष्पेन्दु

केन्द्रीभूत हुई सत्ताएँ—तथा कथित ईश्वर में।
किया विकेन्द्रीकरण—उन्हीं का हर आत्मा के घर में॥
राज्य नहीं, गणतंत्र नहीं, अव प्राणिमात्र अनुशासन—
छाया समवशरण सर्वोदय तीनों लोकों भर में॥१॥
यह स्वतंत्रता-युद्ध वदल जाए यदि मुक्ति-समर में।
तो फिर सच्चा साम्यवाद भी आ जाए क्षण भर में॥
हो सहयोग स्वावलंवन पूर्वक समाज की रचना।
यदि समष्टि की हर इकाई स्थित हो आत्म अमर में॥२॥

आज के संत्रास मय संसार में, महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है

रचयिता :—व्याख्याता श्री लालचंद जी 'राकेश'
शा० उ० मा० शाला रायसेन (म० प्र०)

(१)

आज का मानव पिपासाकुल,
मगर पानी नहीं, वह खून पीना चाहता है।
ओढ़ कर इंसानियत की खाल,
जिन्दगी शैतान की उन्मुक्त जीना चाहता है।।
पुण्य का सम्पूर्णतः परित्याग कर,
दिन-रैन ही है लिप्त वह पापाचरण में।
किन्तु किसी मूर्ख, वेलज्जत,
पुण्य फल की चाह रखता है स्व मन में।।
व्यस्त सुख की खोज में नर,
पर पा रहा सर्वत्र वह तम ही सघन है।
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है।।

(२)

आज नर की जिन्दगी क्या ?
छल, दम्भ, मिथ्या, मोह, तृष्णा की पिटारी।
कनक वर्णी कामिनी की आग में,
आसक्त हो, वनकर शलभ फूंकी, गुजारी।।
और कंचन चाह कितनी ?
द्रोपदी के चीर जैसी वढ़ रही दिन-रात दूनी।

कादम्वनी विन जिन्दगानी,
सेमर-सुमन ज्यों लग रही है व्यर्थ सूनी ॥
"छोड़ इनको सर्वथा रे,
अन्यथा तेरा सुसम्भावी पतन है।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है ॥"

(३)

जन्म क्या है? "मरण की भूमिका है",
ले चुका इसको अनंती वार प्राणी।
मृत्यु का वन ग्रास क्या जाने,
कव कफन ले ओढ़ अस्थिर जिंदगानी ॥
इसलिये भयभीत सव हैं,
लड़खड़ाते भार अपना ढो रहे हैं।
कर रहे हैं पंचपरिवर्तन,
अनादिकाल से दुख दग्ध हो कर रो रहे हैं ॥
"ध्यान द्वार कर्म रिपुओं का दहन,
रोक सकता चार गतियों का भ्रमण है।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ॥

(४)

जीव-हिंसा, झूठ, चोरी का,
जहां देखो वहीं वातावरण है।
चारित्र का रथ गिर रहा है,
दिखता सुरक्षा का नहीं कोई यतन है ॥
और फिर ये ग्रह परिग्रह का,
म ज की खोपड़ी पर चढ़ उसे ललकारता है।

इसलिये नर कर रहा संचय,
दीन-दुखियों को सदा दुत्कारता है॥
"ये पाप हैं, छोड़ें इन्हें,
वन गया इस भांति जो वातावरण है।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है॥

(५)

वन रहे अणुबम, बड़े हम,
कह रहे हैं चीन, रसिया और अमरीका।
विस्तारवादी नीति पर चलकर,
परस्पर कर रहे आलोचना, टीका॥
आज का मानव, दुखी, पीड़ित, प्रकंपित,
पी रहा है अश्रुजल खारा।
बारूद का ईंधन, बनेगा एक दिन,
निश्चित लड़ाकू विश्व ये सारा॥
"जियो खुद, और जीने दो,
अगर माना नहीं इसने कथन है।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का संदेश ही ऊषा किरण है॥"

(६)

कौन देखो जा रहा वह ?
दीन, नंगा और भिखमंगा।
धरा ही सेज है जिसकी,
औ' चादरा आकाश की गंगा॥
इक नजर इस ओर भी डालो,
प्रासाद में वैभव किलोलें कर रहा है।

एक को मिलता नहीं खाने,
दूसरा खाने के कारण मर रहा है ।।
"पाट सकता 'वीर' का आदर्श ही,
अर्थ के वैषम्य की खाई गहन है।"
आज के संत्रस मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ।।

(७)

जन्म से कोई नहीं छोटा वड़ा,
कर्म ही नर श्रेष्ठता की है कसौटी।
एक जैसी आत्मा सव प्राणियों में,
हो किसी की देह लम्वी या कि छोटी ।।
प्यार तुम वांटो सभी को,
वाहु फैला कर गले सवको लगाओ।
तुम किसी के प्राण मत घातो,
विश्व कल्याणी अहिंसा की सुखद लोरी सुनाओ ।।
सर्वोदयी सिद्धान्त कहता,
आइये छोटे-वड़े सवको शरण है।"
आज के संत्रास मय संसार में,
महावीर का सन्देश ही ऊषा किरण है ।।

साम्यवाद और भ० महावीर

वर्द्धमान महावीर विराट् व्यक्तित्व के धनी थे। शान्ति और क्रान्ति के वे जननेता थे। यद्यपि राजसी वैभव उनके चरणों में लोटता था तो भी पीड़ित मानवता और जन जीवन से उन्हें सहानुभूति थी। समाज में व्याप्त अर्थ जन्य विषमता और व्यक्ति उद्भूत काम-वासनाओं के नाग को अहिंसा, संयम और तप के गारुडी संस्पर्श से कील कर वे समता, सद्भाव और स्नेह की धारा अजस्र रूप से प्रवाहित करना चाहते थे।

भ० महावीर का जीवन-दर्शन और तत्त्व-चिंतन इतना अधिक वैज्ञानिक और सर्वकालिक लगता है कि वह आज की हमारी जटिल समस्याओं के समाधान के लिए पर्याप्त है। आज की प्रमुख समस्या है सामाजिक अर्थजन्य विषमता को दूर करने की। इसके लिए मार्क्स ने वर्ग संघर्ष को हल के रूप में रखा। शोषक और शोषित के आपसी अनवरत संघर्ष को अनिवार्य माना और जीवन की अन्तश्चेतना को नकार कर केवल भौतिक जड़ता को ही सृष्टि का आधार माना। इससे जो दुष्परिणाम हुआ वह हमारे सामने है। हमें गति तो मिल गई पर दिशा नहीं। शक्ति तो मिल गई पर विवेक नहीं। सामाजिक वैषम्य तो सतह पर कम हुआ प्रतिभासित हुआ पर व्यक्ति के मन की दूरी बढ़ती गई। व्यक्ति के जीवन में धार्मिकता रहित नैतिकता और आचारहीन विचारशीलता पनपने लगी। वर्तमान युग का यही सब से बड़ा अन्तर्विरोध और सांस्कृतिक संकट है। भ० वीर की विचारधारा को ठीक से हृदयंगम करने पर समाजवादी लक्ष्य

की प्राप्ति भी संभाव्य है और सांस्कृतिक संकट से मुक्ति भी।

भ० महावीर ने अपने राजसी जीवन में और उसके चारों ओर जो अनंत वैभव की रंगीनी थी उससे यह अनुभव किया कि **आवश्यकता से अधिक संग्रह करना पाप है, सामाजिक अपराध है, अभिवंचना है। आनन्द का रास्ता है अपनी इच्छाओं को कम करो। आवश्यकता से अधिक संग्रह न करो।** क्योंकि हमारे पास जो अनावश्यक संग्रह है उसकी उपयोगिता कहीं और है। कहीं ऐसा प्राणिवर्ग है जो इस सामग्री से वंचित है। अभाव से संतप्त है। अतः हमें उस अनावश्यक सामग्री को संग्रहीत कर रखना उचित नहीं। यह अपने प्रति ही नहीं, समाज के प्रति भी छलना है, धोखा है, अपराध है। अपरिग्रह दर्शन का विचार करो। उसका मूल मन्तव्य क्या है ? किसी के प्रति ममत्व, आसक्ति, मूर्च्छा न रखना। वस्तु के प्रति नहीं, व्यक्ति के प्रति भी नहीं। स्वयं की देह के प्रति भी नहीं। **वस्तु के प्रति ममता न होने पर अनावश्यक सामग्री का तो संचय करेंगे ही नहीं। आवश्यक सामग्री भी दूसरों के लिए विसर्जित करेंगे।** आज के संकट काल में जो संग्रह वृत्ति (hoarding) और तज्जन्य व्यावसायिक लाभ वृत्ति पनपी है—उससे मुक्त हम तब तक नहीं हो सकते जब तक अपरिग्रह दर्शन को आत्मसात् न कर लिया जावे। व्यक्ति के प्रति भी ममता न हो। इसका दार्शनिक पहलू केवल इतना है कि अपने 'स्वजनों' तक ही न सोचें। **परिवार के सदस्यों की ही रक्षा न करें वरन् उसका दृष्टिकोण समस्त मानवता के हित की ओर अग्रसर हो।** आज प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में जो अनैतिकता व्यवहृत है उसके मूल में अपनों के प्रति ममता ही विशेष रूप से प्रेरक कारण है। इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति पारिवारिक दायित्व से मुक्त हो जावे। इसका ध्वनित अर्थ केवल इतना ही है कि व्यक्ति स्व के दायरे से निकल कर

पर तक पहुँचे। स्वार्थ के संकीर्ण क्षेत्र को लांघ कर परार्थ के विस्तृत क्षेत्र को अपनाए। संतों के जीवन की यही साधना है। महापुरुष इसी जीवन पद्धति पर आगे वढ़ते हैं। क्या महावीर क्या बुद्ध सभी इसी व्यामोह से परे हट कर आत्मजयी वने। जो जिस अनुपात में इस अनासक्त भाव को आत्मसात् कर सकता है वह उसी अनुपात में लोक-सम्मान का अधिकारी होता है। आज के तथा कथित नेताओं के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस कसौटी पर किया जा सकता है।

अपने प्रति भी ममता न हो यह अपरिग्रह दर्शन का चरम लक्ष्य है। श्रमण संस्कृति में इसीलिए शारीरिक कष्ट सहन और सल्लेखना व्रत को इतना महत्व दिया गया है। वैदिक संस्कृति में समाधि या संत मत में सहजावस्था। इस अवस्था में व्यक्तित्स्व से आगे वढ़ कर इतना सूक्ष्म हो जाता है कि वह कुछ भी नहीं रहता।

संक्षेप में महावीर की इस विचारधारा का अर्थ यही है कि हम अपने जीवन को इतना संयमित और तपोमय वनावें कि **दूसरों का लेशमात्र भी शोषण न हो। साथ ही साथ हम अपने में इतनी शक्ति, पुरुषार्थ और समता अर्जित कर लें कि हमारा शोषण भी दूसरे न कर सकें।**

इस व्रत विधान को देख कर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भ० महावीर ने एक नवीन और आदर्श समाज रचना का मार्ग प्रस्तुत किया। जिसका आधार आध्यात्मिक जीवन जीना है। यह मार्क्स के समाजवादी लक्ष्य से भिन्न ईश्वर के एकाधिकार को समाप्त कर महावीर की विचार धारा ने उसे जनतंत्रीय पद्धति के अनुरूप विकेन्द्रित किया। जिस प्रकार राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति आज प्रत्येक नागरिक के लिए सुगम है उसी प्रकार ये आध्यात्मिक आधार भी उसे सहज ही प्राप्त हो गये। ★

तीर्थंकर भगवान महावीर और उनके सन्देश

ले० पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

अटल-सत्य—

"उत्पाद्व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्" के सिद्धान्तानुसार संसार परिवर्तनशील है, जिसमें विकास और विनाश का चक्र सदा-सर्वदा अवाधगति से घूमता रहता है। प्रकृति के कण-कण में —जर्रे-जर्रे में यह परिवर्तन व्याप्त है। कौन जानता है कि जो आज सुखों की सुरभित शय्या पर सानन्द सो रहे हैं, दूसरे ही क्षण उन्हें काँटों का राहगीर वनना पड़े। जगत को प्रकाशित करने वाले भुवन-भास्कर को उदयाचल से उदित होकर अस्ताचल की शरणलेनी ही पड़ती है। प्रकृति में ऐसे विविध उदाहरण हमें निरन्तर दिखाई देते हैं; किन्तु यदि इन सारे परिवर्तनों को दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो क्या वस्तुतः वस्तु का नाश होता है? तो निश्चय ही मानना पड़ेगा कि वस्तु अथवा द्रव्य का नाश कभी नहीं होता, अवश्य ही उसकी पर्यायों में हेर-फेर होती रहती है।

जैन धर्म का सत्व—

अपेक्षाकृत धर्म विशेप का नाम जैन धर्म नहीं, प्रत्युत् वह तो सहज स्वरूप, सच्चिदानन्द, शुद्धात्मा की विराट् झाँकी है। यह वह तत्त्व है जिसकी की आज के युग में नहीं, अतीत युग

अथवा भविष्य युग में नहीं, परन्तु त्रिकाल में निरन्तर आवश्यकता है ! अनिवार्यता है !! अनिवार्यता इसलिए कि वर्तमान आत्माएँ जिस अवस्था में हैं उनकी वह अवस्था--वह स्वरूप उनका अपना तो है नहीं, किसी दूसरे का है, जिसे कि अज्ञानता वश वे उसे अपना मानती हैं और निरन्तर निवृति मार्ग से दूर हटती हुई वन्धन में फंसती जाती हैं। इसी वन्धन से जीव मात्र को निकालने वाली जो भी वस्तु हो सकती है वही 'धर्म' है। व्यावहारिक नाम में उसी धर्म को - कर्त्तव्य को "पतित पावन जैन धर्म' की संज्ञा है।

आज उसकी अनिवार्यता—

हाँ, तो अतीत अथवा भविष्यत् युग की समस्याओं को कुछ देर के लिए यदि गौण रखा जाय, केवल वर्तमान काल का ही चित्रपट आज अपनी आँखों के सामने खींचा जाय तो कहने की आवश्यकता नहीं कि आज के युग में उसका एक मात्र हल—अमोघ औषधि जो कुछ हो सकती है—"वह जैन धर्म ही है"।

आज विश्व त्रस्त है—संतप्त है, भौतिकता अथवा जड़वाद की क्षणिक विभूतियों में प्राणी विक रहा है— नष्ट हो रहा है। पारस्परिक व्यवहार में वैमनस्य की दुर्गन्धि छाई हुई है। व्यक्ति से लेकर समाज और राष्ट्र तक एक दूसरे का वैभव नहीं देख सकता। दृष्टिकोण और मार्ग सर्वथा विपरीत हो गये हैं। अहम् और दम्भ के विष से भरी हुई बुराईयाँ आज अच्छाईयों का जामा पहिने हुए एक-दूसरे को हड़पने की चेष्टा में प्रवृत्त हैं। कहीं भी कोई भी मुक्ति का मार्ग नजर नहीं आता। आहें तथा क्रन्दन जीवन के परमाणु वन गये हैं। एक वाक्य में—"आज वर्तमान निराश है—मार्ग प्रदर्शन की उसे प्रवल प्रतीक्षा है।"

देखिये न, जहाँ भी थोड़ी सी आशा की झलक दिखाई देती है, उसी ओर उसकी टकटकी लग जाती है। कितना पंगु-पराधीन है आज का विश्व !

क्या कारण है कि अधिकाँश विश्व की आँखें आज भारत पर लगीं हुईं हैं ? अशान्त विश्व आज क्यों भारत से शान्ति की आशा कर रहा है ? इसलिए नहीं कि एक ही व्यक्ति की आवाज़ ने अपने राष्ट्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। अहिंसा से ! शक्ति से ! ! सत्य से ! ! ! और जिस मृतात्मा का सन्देश आज विश्व के मस्तिष्क में अपना घर कर रहा है उस युग पुरुष को अहिंसा और शान्ति का वरदान देने वाली आखिर यह प्रेरणा आई कहाँ से ? किस अतीत के एवं कौन से वीजाङ्कुर इस भारत की पावन भूमि पर डले रहे जिन्हें आज हम फलीभूत होते देख रहे हैं ; तो कहना नहीं होगा कि किसी युग नायक ने ही युग नायक को जन्म दिया होगा और फिर वह युग नायक भी कितना महान् नहीं होगा कि जिसने सारे युग को वदलने के साथ ही अपने को वदलकर परमात्म-पद की प्राप्ति की। स्व कल्याण और पर कल्याण की प्रतीक वह विशुद्ध महान् आत्मा हमारे लिए त्रिकाल वन्दनीय है संस्मरणीय है। अतीत युग का कल्याण यदि उनके उस पावन पौद्‌गलिक शरीर से हुआ तो वर्तमान का कल्याण भी उनके उन्हीं हितकारी सन्देशों से होगा—जो आज हमारे पास अतुल निधि के रूप में—धरोहर के रूप में विद्यमान हैं और जिनके जीते-जागते आदर्श आज हमें देखने को मिलते हैं।

जैनधर्म की प्राचीनता—

आज के इतिहास में नवीन-नवीन खोजों के कारण यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि जैनधर्म अपेक्षा-

कृत सभी धर्मों से प्राचीन है। अनेकों प्रमाणों में से यहाँ पर सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के एक दो प्रमाण प्रस्तुत करना श्रेयस्कर होगा।

'विश्व संस्कृति में जैनधर्म का स्थान' शीर्षक लेख के विद्वान् लेखक श्रीमान् डा० कालीदास नाग एम० ए० डी० लिट लिखते हैं कि ········"जैनधर्म और जैन संस्कृति के विकास के पीछे अगणित शताब्दियों का इतिहास छिपा पड़ा है। श्रीऋषभदेव से लेकर बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ तक महान् तीर्थङ्करों की पौराणिक परम्परा यदि छोड़ भी दी जाय तो भी हमें अनुमानतः ईस्वी सन् ८७२ वर्ष पूर्व का ऐतिहासिक काल बतलाता है कि उस समय २३वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ स्वामी का जन्म हुआ। जिन्होंने ३० वर्ष में घर-गृहस्थी, राजपाट त्याग दिया और जिनको लगभग ईस्वी सन् से ७७२ वर्ष पूर्व विहार प्रान्तस्थ पार्श्वनाथ पहाड़ पर मोक्ष प्राप्त हुआ। भ० पार्श्वनाथ निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के महान् प्रचारक थे। उन्होंने समूचे संसार को पतित पावन अहिंसामयी जैन धर्म का उपदेश दिया। उस समय यह धर्म प्राणिमात्र का धर्म था।"

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् प्रोफेसर श्री रामप्रशाद जी चन्दा के ही शब्दों में···"वास्तव में जैनधर्म अनादि निधन धर्म है, परन्तु इस अवसर्पिणी काल के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी हुए हैं। मोहन-जोदड़ो नामक पुरातन स्थान में एक पांच हजार वर्ष प्राचीन ऐसा शहर मिला है, जहाँ के सिक्कों पर भ० ऋषभदेव की मूर्तियों की छाप है तथा नीचे "जिनेश्वराय नमः" ये शब्द अङ्कित हैं।"

ऋषभदेव किसी भी प्रकार ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी इतिहास में उनको स्थान न दिया जाना यह सिद्ध करता है कि वे वैदिक महापुरुषों से भी एक प्राचीनतम महापुरुष हो चुके

हैं। यही कारण है कि वेदों में यत्र-तत्र ऋषभदेव जी का स्मरण किया गया है इसीलिए इन्हें यदि अन्य महापुरुषों के समान पौराणिक ही मान लिया जावे तो ऐतिहासिक पुरुष मानने में क्या आपत्ति हो सकती है ? इन ऋषभदेव जी से लेकर कितने ही लम्बे कालों के अन्तर से परम्परया भ० पार्श्वनाथ तक वाईस तीर्थङ्कर और हुए। इनमें से नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ तो विशुद्ध ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार कर लिए गए हैं। भ० पार्श्वनाथ के २७२ वर्ष वाद हमारे चरित नायक भ० महावीर स्वामी का आविर्भाव हुआ। इसलिए जिन परिस्थितियों में उनका जन्म हुआ उसको प्रकाश में लाने के पहिले हमें भ० पार्श्वनाथ के वाद के शासन काल की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

भ० पार्श्वनाथ के वाद की परिस्थिति—

भ० पार्श्वनाथ स्वामी के मुक्ति लाभ के २७२ वर्ष वाद और ईस्वी सन् से ६०६ वर्ष पूर्व अर्थात् आज से २४८३ साल पहिले विहार प्रान्त के कुण्डग्राम (वर्तमान वसाड़) नामक नगर में राजा सिद्धार्थ तथा महारानी त्रिशला के गर्भ से भ० महावीर स्वामी का जन्म हुआ। राजा सिद्धार्थ एक न्यायप्रिय शासक थे और उनका राज्य धन धान्य से सम्पन्न था। वे इक्ष्वाकु कुल भूषण ज्ञातृवंशीय क्षत्रिय राजा थे। महारानी त्रिशला उस युग के भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति राजा चेटक की वरिष्ठा (वड़ी) सुपुत्री थीं। वैशाली उनकी राजधानी थी।

इतिहास वतलाता है कि उस काल में भी आज के समान भारतीय गण तंत्रात्मक राज्य छोटे-छोटे राज्य संघों में विभक्त था। उन्हीं राज्य संघों में से वज्जियन राज्य संघ एक विशाल संघ था और राजा चेटक वहीं से अपना शासन संचालन करते

थे। त्रिशला के अतिरिक्त राजा चेटक की छह सुपुत्रियां और थीं। सब से छोटी पुत्री चेलना इतिहास प्रसिद्ध बिम्बसार सम्राट् श्रेणिक की महारानी थीं, राजा सिद्धार्थ सम्राट् श्रेणिक एवं राष्ट्रपति चेटक क्षत्रिय होकर भी जैनधर्म के सच्चे अनुयायी थे। पारस्परिक संबंधों के कारण ये .खूब हिलमिल कर रहते थे। फलस्वरूप तत्कालीन भारत में इनका कोई भी शत्रु नहीं था और जो थे भी वे उत्तम व्यवहारों से वशीभूत कर लिए गए थे। साम्राज्यवाद के ये कट्टर विरोधी थे।

तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक स्थिति—

राजनैतिक स्थिति तो उस समय ऐसी थी जिसकी कि आलोचना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। कारण कि राजकीय पुरुष जैनधर्म के निर्ग्रन्थ आदर्श पथ चिह्नों पर चलते हुए शासन सूत्र चला रहे थे। हमारे चरित्र नायक भ० महावीर स्वामी के पिता सम्राट् सिद्धार्थ स्वयं भ० पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उस समय भारत से दुर्भिक्ष विदा हो चुका था, इसलिए प्रजा राज्य बाधाओं से उन्मुक्त थी। टैक्स उतना ही था, जिसको प्रजा नहीं के बराबर अनुभव करती थी। किन्हीं स्थितियों का यदि अधिक से अधिक मार्मिक तथा रोमाञ्चक वर्णन किया जा सकता है तो वे उस समय की सामाजिक तथा पाखण्डपूर्ण धार्मिक परिस्थितियां ही हो सकती हैं। धार्मिक रीति-रिवाज अपने पाखंडमयी क्रियाकाण्डों के कारण बेहद बिगड़ चुके थे। धर्म के नाम पर जहां एक ओर हिंसा की खुलकर होलियाँ खेली जा रही थीं, वहाँ दूसरी ओर अत्याचार-अनाचार-असत्य-स्वार्थ-अधर्माचार आदि के कारण नैतिक गुणों पर भी पाला पड़ता जाता था। धर्म तत्त्व के प्रत्येक अंग प्रत्यंग में साम्प्रदायिकता का घातक हलाहल भरा हुआ था। उस समय के स्वार्थी-विलासी-पाखंडी एवं मांसाहारी धर्म गुरुओं ने—धर्म

विक्रेताओं ने जिस प्रकार निरपराध मूक पशुओं को जबरदस्ती यज्ञों की होलियों में झोंका है, उसकी करुण कहानी सुनने वालों के पास पत्थर का दिल चाहिये। धर्म तव देवता नहीं, दानव था!! वह विक रहा था—स्वरचित विरचित मंत्रों की वोलियों के आधार पर!

"यज्ञो वधो न वधः"
"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
यज्ञार्थ पशवः सृष्टा स्वयमेव स्वयंभुवा
यज्ञे मृताः स्वर्गं यान्ति

इत्यादि उसके स्पष्ट उदाहरण हैं—नमूने हैं।

अन्ध श्रद्धालुओं या भोलेभालों को स्वर्ग और मोक्ष के टिकट वड़े ही सस्ते मूल्यों पर विक रहे थे। तात्पर्य यह है कि किन्हीं स्वार्थी तत्त्वों के कारण धर्म तथा यज्ञादि क्रियाकाण्डों के नाम पर भारतीय वायुमण्डल हिंसा की दुर्गन्धि से भर गया था।

सामाजिक परिस्थिति भी इतनी आतङ्कपूर्ण और पेचीदा हो गई थी कि उसके परिवर्तित होने के आसार ही नजर नहीं आते थे। धार्मिक अनुष्ठान तो सोलहों आने पापी—पंडों की मुट्ठियों में वंध हो गये थे। मनुष्य और देवों का सीधा संवंध कराने वाले ये पुरोहित दलाल अपना स्वार्थ साधते तो कुछ आपत्ति नहीं भी हो सकती थी, परन्तु अपना अनिवार्य अस्तित्त्व प्रकट करते हुए जव यज्ञों में जीवित प्राणियों को होम देना इनके वाएँ हाथ का खेल हो गया तव दूसरी ओर इनका जात्याभिमान भी खूव फलने फूलने लगा। फलस्वरूप ऊँच-नीच की भावनाओं पर जातिवाद का भूत खड़ा कर दिया गया। शूद्रादि इतर जातियों पर अत्याचार और अनाचार के जो पहाड़ टूट सकते थे टूटे और वे वेवस भी उनके नीचे चकनाचूर होने लगे। नारी का व्यक्तित्व निराश्रय होकर चीखें मार रहा था। एक मात्र

भोग की वस्तु ही उसको करार दिया था परन्तु दूसरी ओर भी यज्ञों में तिलमिलाते हुए प्राणियों की चीखें, शूद्रों और अवलाओं का आर्तनाद तथा दलितों की एक २ आहें साकार क्रान्ति वनतीं जा रही थीं। तात्पर्य यह कि कृत्रिमता के वितान में वास्तविकता छिप गई थी परन्तु प्रकृति के नियम के अनुसार इन समस्त अत्याचारों-पापाचारों के विरुद्ध मोर्चा लेने वाला एक ऐसा परोक्ष वर्ग नैतिक आधार पर तैयार हो रहा था कि जिसके जवरदस्त प्रहारों ने उस अशान्त वातावरण को शताब्दियों पीछे धकेल दिया।

आज का युग जो कि अहिंसा और शान्ति की सत्यता पर विश्वास करने लगा है—सव उसी वर्ग का—उसी क्रान्ति का सुखद परिणाम है। उस वर्ग में विश्व के कोने २ से उठने वाले महापुरुष योरोप के पाइथोगौरिस, एशिया के कन्फ्यूसस लाओत्स आदि उस वर्ग में सम्मिलित होकर जहाँ क्रान्ति के धीमे २ नारे लगा रहे थे वहाँ भारत में भ० महावीर की अहिंसा का एक वुलन्द नारा उन पाखंडी पंडों के हृदयों में सहस्रों भालों सा छिदता था। महात्मा वुद्ध भी यद्यपि इस क्रान्ति के नेता कहे जा सकते हैं किन्तु तवारीख के पन्ने वतलाते हैं कि वे भगवान महा-वीर की तुलना में गौण थे।

वीरावतरण

प्रकृति के निश्चित नियम के अनुसार जव-जव अधर्म का दुष्प्रचार और धर्म का ह्रास होता है, "जीवो जीवस्य भक्षणं" का अहितकारी सिद्धान्त जोर पकड़ता है। शान्ति के स्थान को अशान्ति और परोपकार के स्थान को स्वार्थ हथिया लेता है, उस समय प्राणियों के पिछले किन्हीं शुभ कर्मोदय से कोई न कोई महान् शक्ति इस मर्त्यलोक में अशान्त वातावरण को शान्त

वालक गये और पेड़ पर चढ़कर खेल खेलना शुरू कर दिया। उधर अचानक एक देव वर्द्धमान के वल की परीक्षा हेतु विकराल सर्प का रूप कारण करके आया और पेड़ की पीड से लिपट गया। भाग्य से उस समय वर्द्धमान ही की वृक्ष पर चढ़ने की वारी थी। भागते हुए वर्द्धमान आये और वृक्ष पर चढ़ने ही वाले थे कि इतने में ऊपर से किसी बालक ने उन्हें पेड़ पर चढ़ने से रोका और यह कहता हुआ कि "पेड़ से काला नाग लिपटा है; "वहीं रहो—पास न आओ" कहकर नीचे कूद पड़ा; दूसरे साथी न कूद सके, और भय के मारे रोने-चिल्लाने लगे। राजकुमार वर्द्धमान वेधड़क पेड़ के पास तव तक पहुँच गये और सर्प को पकड़कर उससे खिलवाड़ करने लगे। जव सर्प को वहुत दूर छोड़ आये तव कहीं वालक पेड़ से नीचे उतरे और राजकुमार की निर्भयता-निडरता और शूरवीरता से प्रसन्न होकर उनका "वीर" नाम रख दिया।

राजकुमार वर्द्धमान को महावीर की उपाधि

एक दिन एक हाथी पागल होकर नगर में उपद्रव मचा रहा था। प्रजा वेचैन थी, महावत हैरान थे और राजा सिद्धार्थ परेशान। वड़ी-वड़ी तरकीवें हाथी को पकड़ने की सोची गईं, पर काम एक भी न आई जव यह वात वीर वर्द्धमान को विदित हुई तो घटनास्थल पर पहुंच कर ज्यों ही उस मदोन्मत्त पागल हाथी को पुचकारा और हाथ फेरा तो वह शान्त हो गया। वीर वर्द्धमान नंद्यावर्त महल की ओर वढ़े तो हाथी भी उनके पीछे पीछे चलने लगा, यह देख सभी आश्चर्य चकित हो गये और तव से नगर के लोग उन्हें 'महावीर' कहने लगे।

वर्द्धमान का विद्याध्ययन समारम्भ

वर्द्धमान की आयु का सातवाँ वर्ष समाप्त हो चुकने पर

माता-पिता ने अपने पुत्र को पढ़ने के लिए विद्यालय में भेजने का विचार किया। एक दिन राजा ने पुरोहित को वुलाकर विद्याध्यन का शुभ मुहूर्त निकलवाया और यथा समय तैयारियाँ प्रारंभ करदीं।

देखते-देखते नंद्यावर्त महल के सामने विशाल मण्डप वनकर तैयार हो गया। निश्चित समय से पूर्व ही मण्डप लोगों से खचाखच भर गया। इस अवसर पर कई राजा-महाराजा भी आये थे। हवन क्रिया के उपरान्त उपाध्याय ने कहा—वोलो

"णमो अरिहंताणं"

वर्द्धमान ने पूरा अनादि निधन मन्त्र वोल दिया। उपाध्याय को आश्चर्य हुआ, तव उन्होंने राजकुमार की पट्टिका पर 'अ, आ' लिखकर उनसे इन्हीं दो शब्दों को लिखने के लिए कहा—वर्द्ध-मान ने पट्टिका पर समस्त स्वर और व्यञ्जन वर्ण लिख दिये। उपाध्याय को तव वहुत आश्चर्य हुआ कि इन्होंने विना सीखे यह सव कैसे लिख दिये ! तव उन्होंने एक कठिन सवाल लिख-कर दिया, राजकुमार ने उसे भी हलकर दिया। एक अधूरा श्लोक वोला तो उसकी भी पूर्ति कर दी ! अव तो सभी को वहुत ही आश्चर्य हुआ कि वात क्या है ? उस समय उपाध्याय के कुछ भी समझ में नहीं आया।

पर वास्तविक वात यह थी कि आग काड़ी में कहीं वाहर से नहीं लानी पड़ती, वह तो उसके अन्दर ही रहती है। पूर्व जन्म के सुसंस्कारों के प्रभाव से ही भ० वर्द्धमान-महावीर मति, श्रुति, और अवधि ज्ञान सहित अवतरित हुए थे; इसलिए यहाँ तो उन्हें आग काड़ी को जैसे खींचने ही भर की देर होती है उसी भाँति केवल उन्हें याद दिलाने मात्र ही की आवश्यकता थी। इसलिए अन्य वालकों की तरह इन्हें किसी गुरु से शिक्षा

नहीं लेनी पड़ी—वे तो स्वयं बुद्ध थे।

राजकुमार वर्द्धमान को सन्मति की उपाधि

एक दिन राजकुमार वर्द्धमान अपने साथियों समेत प्रकृति की शोभा निरखने के लिए वन-विहार को गए और एक शिला खंड पर बैठकर किसी तात्विक विषय पर चर्चा करने लगे। उसी समय दो ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये और वर्द्धमान को देखते ही उनकी बहुत दिनों की कई शंकाओं का समाधान हो गया उसी समय मुनिद्वय ने उन्हें सन्मति के नाम से संबोधन कर नमस्कार किया था।

वर्द्धमान को युवराज पद की प्राप्ति

संसार के परदे पर कोई विद्या-विज्ञान और भाषाएँ ऐसी न बची थीं जिनके कि राजकुमार पूर्ण जानकार न थे। तत्त्वज्ञान का जितना अधिक मंथन उन्होंने किया था उतनी ही राजनीति और समाजनीति के समझने की भी कोशिश की थी। उनका विश्वास था कि जिस देश में धर्म समाज और राजनीति की मधुर धाराएँ सम-समान रूप से प्रवाहित नहीं होती। वहाँ का शासन अधिक उन्नत, समृद्ध एवं सुख शान्ति से सुसज्जित नहीं रह सकता। राजकीय सुख शान्ति का श्रेय राजनीति को है। जातीय धन-वैभव का श्रेय समाजनीति को है और आत्मा के विकास का सारा श्रेय धर्म-नीति को है।

राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र को राजनीति में अधिक कुशल जानकर उन्हें युवराज बना दिया। राज्य-शासन की बागडोर संभालते ही महावीरश्री ने अपनी कार्य कुशलता का परिचय इतने अच्छे रूप में दिया कि उनकी सानी का राजनीतिज्ञ इतिहास के पृष्ठों में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता।

आजन्म ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा

कुमार वय के व्यतीत होने पर बड़ी उमंग से अगणित रमणीक भावनाओं को लेकर उस यौवन वय ने युवराज महावीर का सौ-सौ वार स्वागत किया जिसकी रम्य गोदी में बैठकर मनुष्य उन्मत्त हो उठता है, विषय वासनाएँ मानवोचित कर्त्तव्य से उसे दूर फेंक देती है। काम का कठोर प्रहार उसे रमणियों का दास वना देता है; किन्तु विश्व विजेता वर्द्धमान को वह यौवन रंच-मात्र भी विचलित न कर सका। संसारी प्राणियों के वन्धन मोचन करने वाले वर्द्धमान के दयार्द्र दिल को यौवन का प्रवल तूफान तनिक भी न हिला सका। जनता चकित थी कि युवराज में यौवन और ब्रह्मचर्य का यह कैसा विषम सम्मेलन है किन्तु यह कौन जानता था ? कि क्षत्रिय युवराज ने नवयुग प्रवर्तन के लिए मन ही मन आजीवन ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा से अपने को आवद्ध कर लिया है।

विचार-विमर्श

राज्य-शासन के कार्यों में महावीरश्री की न्यायप्रियता और कार्य क्षमता देखकर राजा सिद्धार्थ फूले न समाते थे। वे अपने पुत्र को कुल का भूषण और और न्याय का मूर्तिमान देवता समझते थे। सोचते थे महावीर अपना व अपने वंशजों का नाम विश्व में रोशन करेंगे।

एक दिन राजा सिद्धार्थ ने अपनी भार्या त्रिशला देवी से कहा कि—"अपना शरीर अव वहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया है, संसार के माया-मोह और वर्द्धमान के वात्सल्य में पड़कर दिगम्वरी दीक्षा लेने से अभी तक वंचित रहे जो कि अपने लौकिक हित और लोक मर्यादा की रक्षा और स्थिति की दृष्टि

नहीं लेनी पड़ी—वे तो स्वयं बुद्ध थे।

राजकुमार वर्द्धमान को सन्मति की उपाधि

एक दिन राजकुमार वर्द्धमान अपने साथियों समेत प्रकृति की शोभा निरखने के लिए वन-विहार को गए और एक शिला खंड पर बैठकर किसी तात्विक विषय पर चर्चा करने लगे। उसी समय दो ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आये और वर्द्धमान को देखते ही उनकी वहुत दिनों की कई शंकाओं का समाधान हो गया उसी समय मुनिद्वय ने उन्हें सन्मति के नाम से संवोधन कर नमस्कार किया था।

वर्द्धमान को युवराज पद की प्राप्ति

संसार के परदे पर कोई विद्या-विज्ञान और भाषाएँ ऐसी न वची थीं जिनके कि राजकुमार पूर्ण जानकार न थे। तत्त्वज्ञान का जितना अधिक मंथन उन्होंने किया था उतनी ही राजनीति और समाजनीति के समझने की भी कोशिश की थी। उनका विश्वास था कि जिस देश में धर्म समाज और राजनीति की मधुर धाराएँ सम-समान रूप से प्रवाहित नहीं होती। वहाँ का शासन अधिक उन्नत, समृद्ध एवं सुख शान्ति से सुसज्जित नहीं रह सकता। राजकीय सुख शान्ति का श्रेय राजनीति को है। जातीय धन-वैभव का श्रेय समाजनीति को है और आत्मा के विकास का सारा श्रेय धर्म-नीति को है।

राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र को राजनीति में अधिक कुशल जानकर उन्हें युवराज वना दिया। राज्य-शासन की वागडोर संभालते ही महावीरश्री ने अपनी कार्य कुशलता का परिचय इतने अच्छे रूप में दिया कि उनकी सानी का राजनीतिज्ञ इतिहास के पृष्ठों में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता।

आजन्म ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा

कुमार वय के व्यतीत होने पर बड़ी उमंग से अगणित रमणीक भावनाओं को लेकर उस यौवन वय ने युवराज महावीर का सौ-सौ वार स्वागत किया जिसकी रम्य गोदी में वैठकर मनुष्य उन्मत्त हो उठता है, विषय वासनाएँ मानवोचित कर्त्तव्य से उसे दूर फेंक देती है। काम का कठोर प्रहार उसे रमणियों का दास वना देता है; किन्तु विश्व विजेता वर्द्धमान को वह यौवन रंच-मात्र भी विचलित न कर सका। संसारी प्राणियों के वन्धन मोचन करने वाले वर्द्धमान के दयार्द्र दिल को यौवन का प्रवल तूफान तनिक भी न हिला सका। जनता चकित थी कि युवराज में यौवन और ब्रह्मचर्य का यह कैसा विषम सम्मेलन है किन्तु यह कौन जानता था ? कि क्षत्रिय युवराज ने नवयुग प्रवर्तन के लिए मन ही मन आजीवन ब्रह्मचर्य की भोष्म प्रतिज्ञा से अपने को आवद्ध कर लिया है।

विचार-विमर्श

राज्य-शासन के कार्यों में महावीरश्री की न्यायप्रियता और कार्य क्षमता देखकर राजा सिद्धार्थ फूले न समाते थे। वे अपने पुत्र को कुल का भूषण और और न्याय का मूर्तिमान देवता समझते थे। सोचते थे महावीर अपना व अपने वंशजों का नाम विश्व में रोशन करेंगे।

एक दिन राजा सिद्धार्थ ने अपनी भार्या त्रिशला देवी से कहा कि—"अपना शरीर अव वहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो गया है, संसार के माया-मोह और वर्द्धमान के वात्सल्य में पड़कर दिगम्वरी दीक्षा लेने से अभी तक वंचित रहे जो कि अपने लौकिक हित और लोक मर्यादा की रक्षा और स्थिति की दृष्टि

से वहुत वुरा हुआ, इसलिए अव हमें वर्द्धमान का विवाह करके शीघ्र ही राज-पाट से मोह हटा लेना चाहिए। स्वीकृति सूचक सिर हिलाते हुए त्रिशलादेवी ने पतिदेव के माङ्गलिक प्रस्ताव का हृदय से समर्थन किया और एकलौते पुत्र के विवाह की वात सुनकर अत्यंत आनन्दित हुईं।

आत्म-साधना की वुनियाद

नित्य प्रति राजनैतिक, सामाजिक विसंवादों को सुलझाते-हुए वर्द्धमान की विशाल आत्मा विश्व-हित के लिए तड़फ उठी, धर्म की मखौल उड़ाने वाले पाखंडी पुरोहितों के अत्याचारों से दिल तिलमिला उठा। विश्व-हित की सद्भावनाएँ हृदय में हिलोरें मारने लगीं और सुषुप्त क्षत्रियत्व जाग उठा।

वर्द्धमान ने विचार किया तो विदित हुआ कि दुनियाँ की खूंरेजी का मूल कारण हिंसा और अहंकार है; ये दोनों अत्याचारों की जड़ें हैं, इनका दमन किये विना किसी भी हस्ती को दुनिया में शान्ति कायम करना नामुमकिन है। तोप और तलवार जिस्म के भले ही टुकड़े-टुकड़े करदें पर वे दिल में वहने वाले उत्तम विचारों को नेस्तनावूद नहीं कर सकते। राज्य-दण्ड के डर से विद्रोही का सर भले ही झुक जाये और चाहे तो वह क्षमा भी माँग ले, पर उसके विद्रोही विचार नहीं वदल सकते। आग की जलती हुई ज्वाला में मनुष्य का शरीर भस्म हो सकता है, पर उसकी खोटी प्रवृत्तियाँ तो इससे और भी संतप्त हो जायेंगी। इसलिये अपने सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्द्धमान को कुल परम्परा से प्राप्त राज्य-तंत्र, विशाल शस्त्रागार, और अजेय सेनानी, विशाल भवन व्यर्थ से जान पड़ने लगे। दुनिया को रिझाने वाली भोगोपभोग की विविध आकर्षक वस्तुएँ उन्हें नीरस ज्ञात होने लगीं। राजसी सुखों के वीच वर्द्धमान को रहते

हुए तीस वर्ष गुजर गए, पर स्फटिक के समान स्वच्छ सरल हृदय में लालसा की कालिमा जरा भी न लग पाई थी, यह सव ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपम प्रभाव था।

वर्द्धमान की वीरता (विवाह से इन्कार)

एक दिन वड़ी-वड़ी उमंगों को हृदय में छिपाये महारानी त्रिशला पुत्र के पास पहुँची और युवराज वर्द्धमान कुछ कहें कि उसके पूर्व ही उन्होंने विवाह का सुन्दर प्रकरण उनके समक्ष रख दिया, पहले तो महावीर मुस्कराये; वाद में उन्होंने सूखी हँसी-हँसकर अपना मस्तक झुका लिया, पर जव वही प्रश्न उनके समक्ष फिर दुहराया गया तो उन्होंने अपनी माता से विनम्र शव्दों में विनय की—

"कि इस संसार में सर्वत्र आकुलता ही आकुलता व्याप्त है। मिथ्यात्व और काल्पनिकता की रेतीली दीवारों पर यह संसार टिका हुआ है, अन्याय और अत्याचार, विषमताएँ और भ्रष्टाचार अपना नंगा नाच दिखा रहे हैं। यह सव वातावरण देखकर मेरी अन्तरात्मा इन सव दृश्यों से विरक्ति चाहती है। आत्मनिष्ठा के सत्य को पहचान कर ही मैं अव उसकी साधना करना चाहता हूँ। दुनिया के दलदल में फँसकर यह साधना नितान्त असंभव, है अतः हे माताजी मुझे विवाह करने से सर्वथा इन्कार है।" इस प्रकार अपने हृदय में धर्म प्रचार का जोश लाकर तथा संयम के द्वारा इच्छाओं पर अंकुश लगाकर वैभव से मुख मोड़कर संवंधियों से नाता तोड़कर उन्होंने वारह भावनाओं का चिंतवन किया। जिनका कि अनुमोदन देवों ने भी आकर किया।

वैराग्य और दीक्षा

मायावी दुरंगी दुनिया से चित्त को हटाकर वर्द्धमान ने राज-

पाट और घर-वार को छोड़ दिया और ज्ञातृवनखंड नाम के वन में जाकर मगसिर कृष्णा दशमी के दिन स्वाभाविक नग्न दिगम्वर भेष को ग्रहण कर सिद्ध परमात्मा को साष्टाङ्ग नमस्कार करने के वाद आत्मस्वरूप में लीन हो गये। ध्यान लगाते ही योगों की प्रवृत्तियों को रोकने से उसी समय दूसरों के मन की वात को जान लेने वाला चौथा मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया।

वर्द्धमान को अतिवीर की उपाधि

जिस समय विहार करते हुए महावीर स्वामी उज्जैन नगरी की ओर आये, उस समय ११वें रुद्र ने वड़ा भारी उपसर्ग किया था, पर वे अपने ध्यान से जरा भी विचलित नहीं हुए। उनकी दृढ़ता-त्याग और तपस्या को देखकर महादेव (रुद्र) का मान विगलित हो गया और महावीरश्री के समक्ष आकर नमस्कार करने के वाद उसने उन्हें अतिवीर कहकर प्रार्थना की।

महावीर स्वामी के विरोधी दुष्ट पाखंडियों ने समय-समय पर उन पर भारी अत्याचार किये लेकिन उन्होंने उन अत्याचारों की जरा भी रोक-थाम नहीं की और वे एक वीर सेनानी की तरह अन्त तक वार पर वार सहते ही गये। महावीरश्री ने अपना दयालु गुण नहीं छोड़ा पर विरोधियों को अपने विचारों में परिवर्तन कर लेना पड़ा, अनेक असह्य उपसर्गों को सहन करते हुए महावीरश्री ने इसी तरह वारह वर्ष विता दिये।

महावीरश्री की जीवन मुक्त-अवस्था

अनेक निर्जन वीहड़ वनों—भूधर कन्दराओं-वृक्ष के खोखलों में सर्वोच्च आध्यात्मिक पद प्राप्ति के लिए उग्र तप तपते हुए महावीर जव ऋजुकूला नदी के तट पर अवस्थित जृम्भक ग्राम

के उद्यान में पधारे तब दुद्धर तपश्चरण द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर आपने वैसाख सुदी दशमी के दिन केवलज्ञान प्राप्त कर लिया अर्थात् वे जीवन्मुक्त हो गये। उनका अपूर्णज्ञान पूर्ण ज्ञान के रूप में परिणत हो गया। इस प्रकार भगवान तीर्थङ्कर वर्द्धमान स्वामी तव सर्वज्ञाता-सर्वदृष्टा वीतराग भगवान महावीर हो गये।

महावीरश्री की उपदेश-सभा

भ० महावीर स्वामी को केवलज्ञान के प्राप्त होते ही उसी समय इन्द्रों ने आकर इस महान पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उपलक्ष्य में विशाल विराट् उपदेश सभा का निर्माण किया।

जिस उपदेश सभा का नाम समवशरण था जिसकी विशेषता यह थी कि उसके द्वार विश्व के प्राणिमात्र के लिए खुले हुए थे, आने-जाने की रोक-थाम किसी को भी न थी, न किसी प्रकार का टिकट ही श्रोताओं को खरीदना पड़ता था।

इन्द्र की परेशानी और बुद्धिमानी

वारह कोस की विशाल-विराट् उपदेश सभा सभी श्रेणी के प्राणियों से भर चुकने पर भी जव भगवान महावीर का उपदेश प्रारम्भ न हुआ तो सभा स्थित हर वर्ग के प्राणियों की हैरानी-परेशानी से सभा का व्यवस्थापक इन्द्र भी दुविधा में पड़ गया। विना पट्टशिष्य (गणधर) के तीर्थङ्कर भगवान की वाणी नहीं खिरती, इस वात को अवधिज्ञान से जानकर यह भी ज्ञात कर लिया कि अनेक शास्त्रों और पुराणों का वेत्ता वेदपाठी इन्द्रभूति गौतम ऋषि के आये विना भगवान का उपदेश प्रारम्भ नहीं हो सकता। तव वह वृद्ध विप्र का रूप धारण कर इन्द्रभूति गौतम के समीप जा पहुँचा और जैन धर्म का एक साधारण-सा

श्लोक अर्थ जानने की इच्छा से उसके सामने रख दिया। वहुत प्रयत्न के पश्चात् जव उससे श्लोक का अर्थ नहीं निकला तव उसका अर्थ जानने की जिज्ञासा से इन्द्रभूति गौतम वृद्ध विप्र के पीछे हो लिया। जिस समय वृद्ध ब्राह्मण के भेप में इन्द्र समव-शरण के समीप पहुँचा और पतित पावन जैन-धर्म से सदा विद्वेष करने वाले इन्द्रभूति गौतम ने महा मंगलमय मानस्तंभ देखा तो उसका मान चूर-चूर हो गया, वदला लेने की दुर्भावना भी गुम हो गई और उसके कुभावों में परिवर्तन होने लगा जव वह भगवान महावीर स्वामी के अत्यन्त समीप पहुँचा तो उनके शरीर से निकलने वाली पुण्याभा को देखकर उसका सिर महावीरश्री के चरणों में स्वयमेव झुक गया। उसी समय महावीरश्री का उपदेश प्रारम्भ हुआ। अर्थात् वे विश्व कल्याण के विस्तीर्ण क्षेत्र में उतरे। वीर प्रभु की दिव्यवाणी इन्हीं गौतम गणधर द्वारा ग्रथित एवं व्याख्यायित हुई।

महावीरश्री का पहला कदम (भाषा में क्रान्ति)

महावीरश्री ने अपने उपदेश 'अर्द्धमागधी' भाषा में जो कि उस समय की राष्ट्र भापा थी—दिये। भापा के सम्वन्ध में यह जवरदस्त क्रान्ति थी। उस समय के भारत में संस्कृत की दृढ़ किलेवन्दी को मिटाना कोई आसान कार्य न था। संस्कृत के वे विद्वान पंडित-पुरोहित कि जिनके हाथों में उस वक्त वेदों की सत्ता मौजूद थी—राष्ट्रभापा वोलना वड़ा भारी पाप समझते थे। उस समय प्राकृत-भापा जन-साधारण की भापा से संस्कृत के पंडितों को कितना द्वेप था, यह इसीसे जाना जा सकता है कि वे नाटकों में प्राकृत भापा मात्र नीच पात्रों से वुलवाते थे परन्तु क्रान्ति के अग्रदूत महावीरश्री ने इसका क्रियात्मक विरोध किया—उन्होंने वताया कि भापा अपने मानसिक विचारों को

व्यक्त करने का एक साधन है। इसलिए किसी एक भाषा को आध्यात्मिक वाणी मान लेना निरी मूर्खता है। देश की सभी भाषाएँ प्रत्येक दृश्य-अदृश्य समस्या का स्वतंत्र हल करने की योग्यता रखती हैं। भाषा को उथली और गंभीर वनाना उसके जानने वालों पर निर्भर है। जो भाषा जन-साधारण के मन को नहीं छूती उससे जन-साधारण की कामना करना निरर्थक है। उस समय संस्कृत ही एक ऐसी भाषा थी जो जनता के दिलों को न छूती थी। इसलिए इस भाषा क्रान्ति से जनता में नव चेतना लहरा उठी और राष्ट्र की भाषा में महावीरश्री का उपदेश मिलने की वजह से आध्यात्मिक प्रश्नों को समझने लगी। इसके वाद भारत की वसुन्धरा पर जितने भी संत पुरुष हुए उन सव ने लोक भाषा को ही अपनाया। स्वयं महात्मा वुद्ध ने भगवान महावीर का ही अनुसरण किया – क्योंकि उनका उपदेश भी जन-साधारण की भाषा पाली नामक प्राकृत में हुआ था। महावीरश्री की इस क्रान्तिपूर्ण देन का प्रभाव युग-युगान्तरों को पार कर आज भी हमारे सामने आदर्श की भाँति उपस्थित है।

महावीरश्री का दूसरा कदम (अहिंसावाद)

उस युग में देवी-देवताओं के समक्ष किसी आशा विशेष से मूक पशुओं की वलि वहुत ही निर्भयता से दी जाती थी। संसार के वे अनजान-वेजवान प्राणी जो अपनी तकलीफों को मुँह से कहने में असमर्थ हैं, प्रकृति की तुच्छ घास पर जिनकी जिन्दगी निर्भर है। मानव जाति के अहित की आशा जिनसे स्वप्न में भी संभव नहीं और न जिनकी सुख-दुख भरी मूक वाणी को इस रक्त-रंजित विराट् कोलाहल में कोई सुनने वाला नहीं है ऐसे भोले-भाले प्राणियों की विकल आहुति देखकर महावीरश्री

का मोम सा कोमल दिल पिघल उठा। उन्होंने अहिंसक वाणी में भूली-भटकी जनता को समझाते हुए कहा—

"दया मानव-धर्म का मूल मंत्र है; दया शून्य धर्म हो ही नहीं सकता, दूसरों की भलाई में ही अपनी भलाई निहित है। सुख-दुख का अनुभव सव जीवों को एक-सा होता है, इसलिए सव जीवों को अपने सरीखा समझकर स्वप्न में भी उनका अहित मत करो। सृष्टि की महती कृपा से जो सुविधायें तुम्हें प्राप्त हुई हैं वे इसलिए कि जिससे तुम अधिक से अधिक भलाई कर सको– न कि वुराई के लिए। दीन-दुखियों को तुम से साहस मिले, न कि भर्त्सना और आफत के सताये तुम से त्राण पा सकें, न कि उल्टा कष्ट। प्रकृति के अंग जैसे तुम हो, वैसे दूसरे भी हैं। उनके ताड़न-पीड़न का तुम्हें क्या अधिकार ? यदि उनका निर्माण व्यर्थ हुआ है तो इसका फल वे स्वयं भुगतेंगे या उनका भाग्य भुगतेगा अथवा वह जिसने उन्हें उत्पन्न किया ? व्यर्थ चीजों के संहार का विधान आपको सौंपा किसने ? आपकी दृष्टि में जैसे वे व्यर्थ हैं संभव है आप भी दूसरों की दृष्टि में व्यर्थ ठहरते हों ? तव क्या होगा ? वे जैसे हैं, वैसे ही जीवन विताना चाहते हैं, उन्हें दीन पशु कहाकर जीना पसन्द है, पर आपके क्रूर प्रहार से आहत होकर स्वर्ग जाना स्वीकार नहीं। यदि आपने वलिदान द्वारा स्वर्ग भेजने का प्रण ही वना लिया है तो कृपा कर पहिले आप अपने परिवार से ही यह मांगलिक कार्य प्रारम्भ कीजिये। वे दीन-पशु तो घास खाकर ही जीवन व्यतीत करने में सन्तुष्ट हैं। अत: "खुद जियो और दूसरों को भी जीने दो"—अपने लिए दूसरों को मत मारो—मत हनन करो। अपनी ताकत और वहादुरी को दूसरों की सहायता और भलाई के लिए काम में लाओ। किसी पर जुल्म करना पाप है, और किसी का जुल्म सहना सव से वड़ा पाप है।

महावीरश्री की इस प्रशान्त गंभीर वाणी के सामने हिंसा के कुटिल तर्क कुंठित हो गए और स्वार्थ की निर्दय प्रवृत्तियाँ सदय हो गईं। इस प्रकार महावीरश्री ने न केवल बलिदान वंद किये वल्कि मानव समाज को जीव दया का पाठ पढ़ाया। देवदासी जैसी घृणित-प्रथा को जड़ से उखाड़ फेंकने का सारा श्रेय इन्हीं लोकोत्तर भगवान महावीर को है।

भ० महावीर और महात्मा बुद्ध

विहार प्रान्त के एक अन्य क्षत्रिय राजकुमार गौतम बुद्ध ने भी उस समय की वीभत्स हिंसा को हटाने के लिए महावीरश्री का पदानुसरण किया। उन्होंने भी अहिंसा का प्रचार करने के लिए साधु जीवन स्वीकार किया था। गौतम बुद्ध भ० महावीर स्वामी के समकालीन तथा निकटवर्ती थे।

महात्मा बुद्ध ने पहले भ० महावीर के समान दिगम्बर साधुओं की तरह खड़े रहकर हाथों में भोजन करना, अपने हाथों से केशों का लुँचन करना आदि साधु-चर्या का आचरण किया। पीछे इन विधियों को कठिन जानकर छोड़ दिया। अपने शिष्यों के साथ वार्तालाप करते हुए म० बुद्ध ने भ० महावीर की सर्वज्ञता का जिक्र किया था। वे उन्हें एक अनुपम नेता के रूप में मानते थे। ये बातें बुद्धचर्या आदि ग्रन्थों से प्रमाणित हैं।

महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार तो प्रारम्भ किया परन्तु पीछे अपने अनुयायियों की संख्या विशाल रूप में वढ़ाने के लिए उस अहिंसाव्रत को ढीला कर दिया। अपने आप मरे हुए या अन्य के द्वारा मारे गये जीव का मांस भक्षण कर लेने में भी अहिंसा कायम रह सकती है—वतलाकर महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन में एक वड़ी भूल की। इसीलिये वौद्ध धर्मानुयायियों में मांस भक्षण की परम्परा वनी रही—जो कि अव तक चालू है।

लेकिन भगवान महावीर ने ऐसा कदापि नहीं किया। वहु संख्यक शिष्यों को अनुयायी वनाने का लोभ उन्हें पराजित न कर सका। अतएव भले ही अहिंसा धर्म की दृढ़ चर्या के कारण भ० महावीर के अनुयायी म०-वुद्ध के अनुयायियों से कम संख्या में रहे, किन्तु जो भी रहे पूर्ण अहिंसाव्रती रहे। उन्होंने रंच मात्र भी मांस भक्षण को नहीं अपनाया और आज तक ऐसा ही होता चला आया है, वौद्ध जनता मांस भक्षण से परहेज़ नहीं करती जव कि जैन जनता उससे सर्वथा दूर है।

महावीरश्री का तीसरा कदम (अनेकान्तवाद)

पहले दार्शनिकों का वाद-विवाद अधिकांश में एक-दूसरे के दृष्टिकोण पर सहानुभूति के साथ विचार न करने पर अवलम्वित था। अस्तु दार्शनिक जगत् में समता की स्थापना करने तथा अखंड सत्य का स्वरूप स्थिर करने के उद्देश्य से भ० महावीर ने स्याद्वाद (अनेकान्त) सिद्धान्त की स्थापना की थी। स्याद्वाद दार्शनिक एवं धार्मिक कलह की शान्ति का अमोघ उपाय है। है। वह अति उदारता के साथ दूसरों के दृष्टि विन्दु को समझने की शिक्षा देता है। विशाल हृदय और विशाल मस्तिष्क वनने का आदर्श उपस्थित करता है।

भ० महावीरने स्याद्वाद का सन्देश देते हुए कहा—"तुम ठीक रास्ते पर हो, तुम्हारा कथन सही है, पर दूसरों का कहना भी सही है। दूसरों की सचाई को समझे विना ही अगर उन्हें मिथ्या कहते हो, तो तुम स्वयं मिथ्या भापण करते हो। रुपये के सौ पैसे वताना तो सत्य है परन्तु वीस पंजी कहने वाले को मिथ्याभापी कहने में तुम स्वयं मिथ्याभापी वनते हो। विरोधी को असत्य भापी कहना तुम्हारी सत्यनिष्ठा नहीं है। किन्तु उसकी सत्यनिष्ठा को भलीभाँति समझ लेने में ही तुम्हारी

सत्यनिष्ठा है।"

प्रत्येक वस्तु को ठीक-ठीक समझने के लिए उसे विभिन्न दृष्टियों से देखो उसके अलग अलग पहलुओं से विचार करो, वस्तु के अनन्त गुणों तथा अनन्त विचार धाराओं का शुद्ध समन्वय करने की शक्ति स्याद्वाद में है अनेकान्तवाद में है।

विभिन्न दर्शन शास्त्रों का समन्वय करने में समस्त दर्शन शास्त्र एक दूसरे के विरोधी न रह कर पूरक बन जाते हैं। उन सव के समन्वय में ही अविकल सत्य के दर्शन हो सकते हैं। अतएव वस्तु तत्त्व की प्रतिष्ठा करने के लिए तथा व्यावहारिक जीवन में साम्य लाने के लिए स्याद्वाद (अनेकान्त) की अत्यन्त उपयोगिता है। स्याद्वाद का यह सुनहरा सिद्धान्त भ० महावीर की सवसे वड़ी अनुपम देन है।

महावीर श्री का चौथा कदम (साम्यवाद)

उस समय के धार्मिक क्षेत्र में वहुत सी मूर्खताएँ प्रचलित थीं। धर्म तत्त्व में आध्यात्मिकता का कोई प्रमुख स्थान नहीं था। हर जगह वही मूर्खतापूर्ण व्यापार की प्रधानता थी। हर-एक धर्म संकुचित घेरे में पड़ा सिसकारियाँ ले रहा था। भ० महावीर ने इन सभी वुराईयों का घेरा तोड़कर अत्यन्त वीरता और दृढ़ता के साथ मुकावला किया। विभिन्न समाजों में समता की स्थापना हेतु उन्होंने मानव जाति को एकता का उपदेश दिया। उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा—

"मनुष्य जातिरेकैव"

अर्थात् मानव जाति एक ही है। उसको कई भागों में वाँटना निरी मूर्खता है। व्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि का जाति भेद विल्कुल काल्पनिक है। कर्म से व्राह्मण होता है,

कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है। इसलिए गुणों की पूजा करो, शरीर की नहीं। किसी को दलित और नीच कह कर मत दुत्कारो, मत घृणा करो ; न किसी को उच्च कुल में उत्पन्न होने से ही उसे ऊँचा मानो ! सब मनुष्यों को अपना भाई समझो और अनुचित भेद भावों को भूल जाओ।

यह विश्वास और धारणा कि मैं पवित्र हूँ और वह अपवित्र है, मैं ऊँच हूँ और वह नीच है, जघन्य और घृणित पाप है जो विश्व को रसातल में पहुँचाये विना कदापि नहीं रह सकता। विश्व का कोई भी अंग अपवित्र अथवा नीच नहीं है। इसके विपरीत यह मानना कि अमुक अंग अपवित्र और नीच है— राष्ट्र, धर्म और समाज के प्रति महान कलंक हैं—भयंकर पाप है। किसी को नीच कह कर उसके स्वाभाविक धर्माधिकारों को हड़पना निःसन्देह महा नीचता है—घोर पाप है।

महावीरश्री का पाँचवाँ कदम (कर्मवाद)

भ० महावीर स्वामी ने कर्मवाद के सम्बन्ध में कहा— "जो जैसा करता है वही उसे भोगता है इसलिए 'जैसी करनी वैसी भरनी" के व्यक्ति सम्मत सिद्धान्त को किसी कल्पित और अज्ञात शक्ति को सौंप देना कहाँ की वुद्धिमानी है। जिस वस्तु को व्यक्ति ने पैदा किया है उसका उपयोग करने या न करने का उसे पूरा अधिकार है। परम पिता परमात्मा कोई किसी को सुख-दुख नहीं देता किन्तु पूर्ववद्ध कर्मों का प्रतिफल समय आने पर व्यक्ति को अपने आप मिलता है। जव कोई व्यक्ति अच्छे या वुरे विचार या आचरण करता है—उसी वक्त उसके आस-पास (इर्द-गिर्द) में फैले हुए अनन्त पुद्गल परमाणु खिंच कर आते हैं और उसकी आत्मा से चिपट कर आत्मस्वरूप

को ढक लेते हैं, इसी को जैन-सिद्धान्त में कम कहते हैं। इन्हीं संचित कर्मों की वजह से यह जीव विविध योनियों में भ्रमण करता हुआ सुख-दुख भोगता है। इसलिए हर समय उठते-वैठते-सोते-जागते शुभ आचार-विचार करो—जिससे ये दुष्ट कर्म तुम्हारी आत्मा को मैला-कुचैला न कर सकें। इन्हीं कर्म शत्रुओं को तपश्चरण द्वारा नाश कर आत्मा-परमात्मा बन जाता है।

ईश्वर, परमात्मा, भगवान, पैगम्वर, खुदा-तीर्थङ्कर ये सब एक ही नाम के पर्यायवाची शव्द हैं। इनमें नाम का झगड़ा करना व्यर्थ है। परमात्मा प्राणियों का पथ-प्रदर्शक हो सकता है। उसे आदर्श अनुपम और अलौकिक मानकर उनकी पूजा-अर्चना कर उनके वताये मार्ग पर चलने में भी किसी को ऐतराज नहीं होना चाहिये। लेकिन यदि परमात्मा व्यक्ति की प्रवृत्तियों एवं उसके फल पर बन्दिस लगाना चाहे तो यह उसकी ऐसी अनाधिकार कुचेष्टा कही जायगी जिसे कोई दिमाग रखने वाला विज्ञानी आत्मा मानने को कटिबद्ध न होगा।

राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ममता, जन्म, मरण आदि अनेक रोगों से रहित कर्म विहीन आत्मा ही परमात्मा है, ईश्वर है, तीर्थङ्कर है, पैगम्वर है। विश्व-विधान से उसका कोई वास्ता नहीं है। सृष्टि तो जैसी आज है वैसी ही पहिले भी थी और आयन्दा भी वैसी ही रहेगी। उसमें होने वाले परिवर्तन-परिवर्द्धन और उत्पादन काल चक्र की देन है—परमात्मा की नहीं। इसलिए जगत के भूले-भटके दुखित संत्रस्त प्राणियों को संवोधते हुए भ० महावीर स्वामी ने कहा—"जप, तप, संयम, नियम, सदाचार, विज्ञान और आत्मा का अहर्निशि चिन्तन-मनन करने से हर एक व्यक्ति ईश्वर के अविनाशी अजर-अमर पद पर पहुँच सकता है।"

भ० महावीर ने कर्मवाद के सिद्धान्त का प्ररूपण कर हर एक व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा दी और ईश्वरशाही के हथकंडों से वचाकर कर्मठ एवं कर्त्तव्यनिष्ठ वनाया।

महावीरश्री का छटवाँ कदम (निःसंगवाद)

मनुष्य का स्वभाव ही संग्रहशील है—अधिक से अधिक जुटाना, संग्रह करना उसकी प्रधानवृत्ति है। लेकिन यही प्रवृत्ति विश्व कलह की जननी है। दूरदर्शी भ० महावीर स्वामी मानव स्वभाव की इस वड़ी कमजोरी से युवराजावस्था से ही परिचित थे, इसलिए उन्होंने आर्थिक विषमता को मिटाने के लिए ही निःसंगवाद अर्थात् अपरिग्रहवाद का धर्म में समावेश किया। यदि वे ऐसा न करते तो जनता इसे राजनैतिक चाल कह कर टाल देती! निःसंगवाद का स्पष्ट अर्थ है—जरूरत से अधिक नहीं जोड़ना! यह जरूर है कि सम्पत्ति मानव जीवन की सव से अधिक आवश्यक वस्तु है लेकिन श्वाँस लेने की तरह नहीं। यदि संसार की सारी सम्पत्ति एक जगह जुड़ जाय तो दुनियां में विप्लव मच जाय, कलह और क्रान्ति की उद्भूति होने लग जाय! धन का संग्रह करना वुरा नहीं है, लेकिन उसको जमीन में गाढ़ रखना या केवल अपने ही स्वार्थ के काम में लाना वुरा है—वहुत अधिक वुरा है।

निःसंगवाद और साम्यवाद दोनों में भेद है। निःसंगवाद व्यक्ति से सम्वन्ध रखता है और साम्यवाद राज्यकीय संगठन से। निःसंगवाद में व्यक्ति की भावना काम करती है और साम्यवाद में राज्यकीय अनुशासन। निःसंगवाद का दारोमदार अहिंसा पर अवलम्वित है जव कि साम्यवाद हिंसा पर आश्रित है। निःसंगवाद का स्रोत हृदय है और साम्यवाद दिमाग के तूफानी

विचारों से पैदा हुआ है। दिमाग की अपेक्षा हृदय से निकली चीज अधिक टिकती है, इसीलिये लोग उसे अपनाते भी हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि निःसंगवाद सिद्धान्त की सतत प्रवाहशील शीतल धारा है और साम्यवाद सिर्फ समय की देन है। संसार के इतिहास में यदि पहिले-पहल पूंजीवाद की खिलाफत कहीं मिलती है तो वह भगवान महावीर स्वामी के निःसंगवाद में।

महावीरश्री का सातवाँ कदम (धर्मवाद)

धार्मिक क्षेत्र में भी भ० महावीर स्वामी ने अनेक संशोधन किये थे। उन्होंने धर्म सम्वन्धी जनता की दूषित मनोवृत्ति को वदल दिया था। 'महावीरश्री ने धर्म को आत्मस्पर्शी वनाकर जीवन में उसकी प्रतिष्ठा की। उन्होंने धर्म का जो रूप जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया वह वहुत ही सीधा-साधा सरल-सार्वजनिक और व्यापक था। उन्होंने कहा—"सत्य का ही दूसरा नाम धर्म है और वह वहु सनातन है—अनादि निधन है। जो सनातन नहीं, वह सत्य नहीं हो सकता। वह किसी सीमा में आवद्ध नहीं है। सत्य को उत्पन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि वह कभी मरता ही नहीं है। सत्य तो सुमेरु की तरह अचल और आकाश की भाँति नित्य और व्यापक है। इसलिए सत्य ही धर्म है। वह कभी और कहीं नूतन नहीं हो सकता। वही सत्य उत्कृष्ट मंगल स्वरूप है, ऐसा परम उत्कृष्ट मंगल जिसमें अमंगल का लेश भी न हो—वास्तविक धर्म कहलाता है। सत्य तो आत्मा की आवाज है, वह आत्मा में ही रहता है। जो आत्मा की वास्तविकता से अवगत हो जाता है—वह धर्म-तत्त्व को जान लेता है—समझ लेता है। वास्तविक धर्म सत्य ही है। उसी सत्य के संरक्षण के लिए वाहरी जितने भी व्रत संयम-नियम पाले

जाते हैं वे सव उसके कारण हैं। व्रतों का अनुष्ठान ही सत्य के संरक्षण के लिए किया जाता है।

"वत्थु स्वभावो धम्मः"

अर्थात् वस्तु का जो स्वभाव है वही धर्म है। आत्मा का स्वभाव सत्य रूप है इसलिए वास्तविक धर्म सत्य ही है।

स्त्रियों के प्रति महावीरश्री की उदारता

प्रायः स्त्रियों पर सदा से अत्याचार होते आये हैं, इसलिए संभवतः उनको अवला नाम से पुकारा जाता है। उस समय भी स्त्री जाति पर अधिक अत्याचार होता था। उसका कोई व्यक्तित्व न था। उसका पढ़ने-लिखने तक का अधिकार छिन गया था। वह केवल पुरुष की दासी मात्र थी। इतना ही नहीं, उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता भी नहीं थी। उसे मृत-पुरुष के साथ जवरन जलना पड़ता था, उसके सतीत्व का भी यही अर्थ था—यही प्रमाण था कि जीवन भर पुरुष की इच्छा पर नाचती रहे और उसके मरने पर उसकी चिता के साथ जल मरे—अपनी आहुति दे दे।

भगवान महावीर ने इसका घोर विरोध किया सत्याग्रह किया और पुरुष को स्त्री की महत्ता वतलाई। वे स्त्रियों का वहुत आदर करते थे और उनकी विराट् धर्म-सभा में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

के सुन्दर सुरभित गीत उन्हीं के दिव्योपदेश का फल है। उनके पहले तो—

'न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति'—'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्'

इत्यादि कल्पित शास्त्राज्ञाओं ने स्त्रीत्व के सारे गौरव को मिट्टी में मिला रखा था। पर भ० महावीर के उपदेश ने स्त्रियों में

ऐसी क्रान्ति का बिगुल फूँका कि उनकी उपदेश सभा में वे पुरुषों से कई गुणी अधिक पहुँचती थीं और उनका दिव्योपदेश श्रवण कर आत्म-कल्याण में विरत हो जाती थीं। आज भी जितनी अधिक धार्मिकता स्त्रियों में है, उतनी पुरुषों में नहीं है उन्हीं की धार्मिकता से भारतीय संस्कृति अभी तक अक्षुण्ण वनी हुई है। जिसका सारा श्रेय भ० महावीर स्वामी को है।

आश्चर्यजनक अतिशय

भ० महावीर ने ३० वर्ष तक लगातार तत्कालीन भारत के मध्य के काशी, कौशल, कौशल्य, कुसन्ध्य, अश्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त, पंचाल, भद्रकार, पाटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक नाम के देशों में, समुद्रतट के कलिङ्ग कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांवोज, वाल्हीक, यवन श्रुति, सिन्धु, गांधार, सूरभीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज, और क्वाथतोय देशों में एवं उत्तर दिशा के तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि देश-देशान्तरों में भ्रमण किया। वे जहाँ जाते वहाँ विराट् धर्म-सभाएँ की जातीं, उन धर्म-सभाओं में लाखों-करोड़ों नर-नारी, पशु-पक्षी तक आकर वैठते और भगवान का दिव्योपदेश सुनते थे।

स्वाभावतः प्रश्न उठता है कि उस समय तो आज सरीखे रेडियो और लाऊडस्पीकर नहीं थे, फिर भ० [महावीर स्वामी की आवाज सभा में स्थित लाखों आदमियों तक कैसे पहुँचती होगी ?

प्रश्न वास्तविकता को लिए ठीक है पर जिनको इस प्रकार की शंका होती है उनको ज्ञात होना चाहिए कि वर्तमान की अपेक्षा उस समय विज्ञान का अभाव नहीं था, उस समय भी किसी भिन्न प्रकार के ध्वनि प्रसारक या ध्वनिवर्धक साधन महावीरश्री के धर्म-सभा में रहते थे जिन्हें जैन परिभाषा में

अर्द्ध मागध जाति के देव या एक प्रकार का अतिशय कहते हैं—उनके द्वारा उनका उपदेश १२ कोष लंबी-चौड़ी गोल विराट् धर्म सभा में पहुँचता था।

महावीरश्री के धर्मोपदेश का प्रभाव

भ० महावीर स्वामी ने अपने हित-मित मयी दिव्योपदेश द्वारा उस समय के लोक में प्रचलित सभी तरह के अन्याय, अत्याचार, अनाचार, दुराचार, दुष्प्रथाएँ, दुराग्रह एवं पोप-पन्थों के विरुद्ध सत्याग्रह किया और जन-साधारण को सन्मार्ग का सदुपदेश दिया। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओं ने अमीरों और गरीबों ने, विद्वानों और अल्पज्ञों ने उच्च और दलितों ने, छूत और अछूतों ने, पशु और पक्षियों ने सभी ने पतित-पावन विश्व (जैन) धर्म धारण कर प्राप्त जीवन को सफल बनाया। उस समय भ० महावीर स्वामी द्वारा प्रचारित जैन-धर्म आज सरीखे तंग घेरे में बंद नहीं था, उसका दरवाजा तो सभी के लिए खुला था। इसीलिए उस समय इस धर्म ने सार्वभौमिकता प्राप्त कर ली थी।

लोकोपकारी भ० महावीर ने अगणित प्राणियों को अज्ञानान्धकार से निकालकर यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान कराया, मोह मिथ्यात्व और मूर्खता का आवरण हटाकर जीवों को सच्चा रास्ता सुझाया और प्रचुर मात्रा में प्रचलित लोक मूढ़ताओं-पाखण्डों-रूढ़ियों और दुराग्रहों को हटाया, पतितों को पवित्र किया, अछूतों को छूत बनाकर गले लगाया, हिंसा को वन्द कराकर "खुद जियो और दूसरों को जीने दो" का सबक पढ़ाया, कायरता को हटाकर जनता को स्वावलम्बी बनाया, वैमनस्यता को पछाड़ कर विश्व में भ्रातृत्व भाव को फैलाया। इस तरह भ० महावीर स्वामी ने अपने सदुपयोगी संदेशों द्वारा संसार को

सुखी शाँत और पवित्र वनाया।

लगातार तीस वर्ष तक दिव्योपदेश देने के उपरान्त ७२ वर्ष की आयु के अन्त समय स्वात्मस्थ हो गये और कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पहली (चतुर्दशी के बाद की) रात्रि को स्वाति नक्षत्र में बिहार प्रान्तस्थ मल्लिवंशीय राजा हस्तिपाल की राजधानी मध्यमा पावापुर से अवशिष्ट चार अघालिया कर्मों का विनाश कर मोक्ष-लक्ष्मी को वरण किया था। इस तरह भ० महावीर स्वामी के ७२ वर्षों में एक भी क्षण उनका ऐसा नहीं गया जिस क्षण में उनके द्वारा दूसरों का उपकार न हुआ हो। उनका जीवन वास्तव में आदर्श जीवन था।

कृतज्ञता

महावीर श्री ने संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति महान उपकार किया था, उनके अगणित उपकारों से जनता दवी जा रही थी इसलिए कृतज्ञतावश उस समय की जनता ने अपने उपकारी परमगुरु के मुक्ति लाभ की खुशी में दीप जलाकर अपनी प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया था, तभी से दीपावली का पावन त्यौहार भारत में प्रचलित हुआ जो कि आज तक महावीरश्री के उपासकों द्वारा प्रतिवर्ष धूमधाम से मनाया जाता है।

महावीरश्री की स्मृति में वीर निर्वाणसंवत् भी आज तक प्रचलित है।

जय महावीर जय वर्द्धमान

जय सन्मति

जय वीर जय अतिवीर

—x—

पृष्ठ निर्देशन (ब)

—०—

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की
जीवन-रेखाएँ

१.	शुभ नाम सम्वोधन	वर्द्धमान, महावीर, वीर, अति-वीर, सन्मति, वैशालिक, वैदेहिक, निग्गंठनात पुत्त, त्रिशलानन्दन
२.	जाति	क्षत्रिय
३.	गोत्र	काश्यप
४.	दैहिक दीप्ति	तप्त स्वर्ण तुल्य
५.	वंश	ज्ञातृ वंश
६.	कुल-धर्म	आर्हत्
७.	चिह्नांक	सिंह
८.	पितृ-नाम	सिद्धार्थ
९.	मातृ-नाम	त्रिशला (प्रियकारिणी)
१०.	गर्भावतरणवेला	अषाढ़ सुदी ६, उत्तर हस्ता नक्षत्र, शुक्रवार, १७ जून ५९९ ई० पूर्व
११.	जन्म कल्याण वेला	चैत्र सुदी १३ उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र
१२.	जन्मभूमि	कुंडग्राम वैशाली (विहार प्रान्त) गणतंत्र
१३.	व्रत-संयम	पंच अणुव्रत, महाव्रत
१४.	निर्ग्रन्थ दीक्षा	ज्ञातृ खण्ड वन, उत्तर हस्ता नक्षत्र मगशिर कृष्ण १० सोमवार २९ दिसम्वर ५६९ ई० पूर्व

१५.	तप कल्याणक	शाल वृक्ष के नीचे, वैशाख सुदी १०, उत्तर हस्ता नक्षत्र रविवार २६ अप्रैल ५५७ ई० पू०
१६.	केवल ज्ञान कल्याणक	ऋजुकला नदी के तट पर
१७.	प्रधान गणधर	गौतमादि ग्यारह
१८.	प्रधान श्रोता	श्रावकोत्तमविम्बसार (श्रेणिक) महाराज मगध सम्राट्
१९.	निर्वाण स्थल	मध्यमा पावानगर (विहार)
२०.	आयुष्य प्रमाण	७१ वर्ष ४ माह २५ दिन
२१.	निर्वाण वेला	शक संवत् ६०५ वर्ष पूर्व, स्वाति नक्षत्र, भौमवार १५ अक्टूबर ५२७ ई० पू०
२२.	निर्वाण कल्याणक	हस्तिपाल राजा की उपस्थिति में निष्पन्न
२३.	दीपोत्सव	रत्नदीप मय दिव्यालोक नागरिकों द्वारा सम्पन्न
२४.	प्रधान साध्वी	चन्दना सती (त्रिशला जी की लघु भगिनी)
२५.	दिव्य-ध्वनि	प्रथम देशना विपुलाचल राजगृह में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (वीर-शासन जयंती)
२६.	सिद्धान्त	स्याद्वाद (अनेकान्त) परम अहिंसा अपरिग्रह आदि

जीवन-चक्र

१

इस जगती का रंग-मंच, ऐसा अपूर्व संगम-स्थल है ।
जहाँ विविधताओं का अभिनय, होता ही रहता प्रति पल है ॥

२

चिर अनादि से जीव अनन्तानंत, स्वाँग धर भटक रहे हैं ।
आतम के अवलम्ब विना ही, पर्यायों में अटक रहे हैं ॥

३

ऐसे ही संसारी जीवों में, हम सव की है निजात्मा ।
जो अपने विस्मरण मरण से, खुद का ही कर रही खात्मा ॥

४

महावीर की भी निजात्मा, हम जैसी ही संसारी थी ।
युग-युगान्तरों आत्म-ज्ञान की, नहीं कोई भी तैय्यारी थी ॥

५

लेकिन जिस क्षण खुद को जाना, माना पौरुष को पहिचाना ।
कर्मठ सम्यक्त्वी ने तत्क्षण, कर्म-शत्रुओं से रण ठाना ॥

६

और अन्ततः विभव-विभावों, का अभाव कर मुक्त हुये वे ।
भव-भव की पर्यायें तज, स्वाभाविकता से युक्त हुये वे ॥

७

भगवान जन्मते नहीं किन्तु, पौरुष से वनते आये हैं ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित का, पंथ प्रशस्त करते आये हैं ॥

८

निम्न अवस्थाओं से लेकर, ऊँचे से ऊँचे विकास की ।
क्रमशः झाँकी यहाँ देखिये, महावीर के मोक्ष वास की ।।

महावीरश्री अतीत की परतों में

हीयमान से वर्द्धमान

वनवासी पुरुरवा

९

पुण्डरीकणी वन का वासी, भिल्लराज था 'पुरूरवा' ।
और 'कालिका' नामक उसकी, भद्र भीलनी श्याम-प्रभा ।।

१०

एक दिवस दम्पति ने मृगया, में मृग का जव किया शिकार ।
'सागरसेन' एक मुनि तव ही, एकाकी कर रहे विहार ।।

११

पुरूरवा ने हरिण समझ उन, मुनिपर शर संधान किया ।
किन्तु कालिका ने निज पति के, दृष्टि दोष को जान लिया ।।

१२

वोली—नाथ ! रुको मत मारो, ये वन-देव दिगम्वर हैं ।
आत्मलीन ये पर उपकारी, महाव्रती जिन गुरुवर हैं ।।

१३

इनके वध के पाप-भाव से, मत भव-भव का वन्ध करो ।
इनके चरण-कमल से, अपने मस्तक का सम्वन्ध करो ।।

१४

सुन कर यह कल्याणी-वाणी, भिल्लराज को जागा ज्ञान ।
तत्क्षण पाद मूल में पहुँचा, फेंक वहीं पर तीर-कमान ।।

१५

मुनि श्री ने तव भव्य जान कर, उसको दिया धर्म-उपदेश ।
मद्य-मांस-मधु-सप्त व्यसन से, वर्जित श्रावक व्रत निःशेष ।।

१६

धारण कर सम्यक्त्व सहित, वह जप-तप-संयम अणुव्रत शील ।
प्रथम स्वर्ग में देव महर्द्धिक, हुआ समाधि-मरण से भील ।।

पुरुरवा प्रथम स्वर्ग में

१७

महाकल्प नामक विमान में, वह सौधर्म-स्वर्ग का देव ।
मात्र एक अन्तर्मुहूर्त में, तरुण-किशोर हुआ स्वयमेव ।।

१८

अवधिज्ञान से जान लिया निज, पूर्व-जन्म का सव वृत्तान्त ।
धर्म-ध्यान के पुण्य फलों पर, उसकी श्रद्धा वढ़ी नितान्त ।।

१९

अतः सपरिकर चैत्य-वृक्ष पर, स्थित अरिहन्तों को नित्य ।
भक्ति-भाव से पूजा करता, था ले अष्ट-द्रव्य-साहित्य ।।

२०

नन्दीश्वर या पंचमेरु की, वन्दनाओं का लेकर लाभ ।
समवशरण में गणधर-वाणी, सुनता था वह सुर अमिताभ ।।

२१

सात हाथ ऊँचा शरीर था, सप्त धातु से रहित ललाम ।
आयु एक सागर वर्षों की मति, श्रुति अवधिज्ञान अभिराम ॥

२२

अष्ट ऋद्धियों का धारी वह, पाकर अनुपम पुण्य-विभूति ।
अनासक्त रह कर भोगों से, करता सदा आत्म-अनुभूति ॥

२३

यद्यपि वह देवाङ्गनाओं के, साथ सतत करता था केलि ।
तो भी उसे न मूर्च्छित करती, थी क्षणमात्र विषय विष-वेलि ॥

२४

आयु पूर्ण कर देव धरा पर, ऋषभदेव का पौत्र हुआ ।
भरत चक्रवर्ती के घर में, यह 'मारीचि' सुपुत्र हुआ ॥

भरत चक्रवर्ती पुत्र मारीचि कुमार

२५

छह खंडों की वसुन्धरा का, प्रमुख राजधानी का केन्द्र ।
भरतेश्वर थे जिसके अधिपति, निर्माता जिसका देवेन्द्र ॥

२६

उसी अयोध्या में चक्री की, प्रिया 'धारिणी' के उर से ।
सुत 'मारीचि' हुआ मेधावी, चय कर सौधर्मी सुर से ॥

२७

भोगों से होकर विरक्त श्री, 'ऋषभदेव' निर्ग्रन्थ हुये ।
चार सहस्र नृपति भी उनकी, देखा देखी सन्त हुये ॥

२८

चूं कि द्रव्य लिङ्गी मुनि थे वे, अतः धर्म से भ्रष्ट हुये ।
भूख-प्यास से व्याकुल होकर, जल-फल प्रति आकृष्ट हुये ॥

२९

'भरत' चक्रवर्ती के भय से, नः नागरिक वने नहीं ।
आदीश्वर सम रत्नत्रय के, भाव-लिङ्ग में सने नहीं ॥

३०

अतः वनस्थित देवराज ने, उन सब को यों किया सचेत ।
वेष दिगम्वर धारण करके, क्यों पाखंडी वने अचेत ॥

३१

इनमें से कुछ राजा गण तो, उद्बोधन को प्राप्त हुये ।
किन्तु शेष दुर्गति अनुसारी, मिथ्यामति में व्याप्त हुये ॥

३२

अन्तिम तीर्थङ्कर होगा, 'मारीचि'-दिव्यध्वनि में आया ।
जिसको सुनकर स्वच्छन्दी, ने अपनापन ही विसराया ॥

३३

होनहार अनुसार बना वह, मिथ्यामत का नेता था ।
परिव्राजक का वेष धार, उपदेश विपर्यय देता था ॥

३४

मैं भी श्री जिन आदिनाथ सा, जगद्गुरू कहलाऊँगा ।
उन जैसा ही मैं भी अपना, पंथ अलग अपनाऊँगा ॥

३५

मिथ्यापन की यही मान्यता, भव-भव हमें रुलाती है ।
सम्यग्दर्शन के अभाव में, स्वर्ग-नरक दिखलाती है ॥

३६

परिव्राजक निज तप प्रभाव से, आयु पूर्ण कर स्वर्ग गया।
ब्रह्म स्वर्ग के सौख्य भोगकर, पुनः धरा पर मनुज भया॥

मिथ्या मत प्रचारक जटिल ऋषि

३७

ब्रह्मस्वर्ग से चय कर वह, मारीचि जीव अवनी पर।
'जटिल' नाम का पुत्र हुआ, द्विज कपिल और काली घर॥

३८

ऋषि बन कर मिथ्यात्व-धर्म का, उसने अति उपदेश दिया।
भाँति भाँति की करी तपस्या, एवं कायः क्लेश किया॥

३९

आयु पूर्ण कर उस तापस ने, प्रथम स्वर्ग में जन्म लिया।
स्वर्गिक सुख के भोगों में ही, अपना काल व्यतीत किया॥

परिव्राजक पुष्पमित्र

४०

भारद्वाज-पुष्पदत्ता थे, भारतीय द्विज दम्पति थे।
इनके सुत मारीचि जीव अब, पुष्पमित्र नामक यति थे॥

४१

वे स्वर्गों का वैभव तज कर, नगर अयोध्या आये थे।
सांख्य धर्म के उपदेशों से, जन जन को भरमाये थे॥

४२

आयु पूर्ण कर पुनः हुवे, सौधर्म स्वर्ग अधिकारी।
क्योंकि तंपस्या के प्रभाव से, मिले सम्पदा भारी॥

एकान्तमत प्रचारक अग्निसह्य ब्राह्मण

४३

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी में, अग्निभूति ब्राह्मण थे।
प्रिया गौतमी के संग सुख से, करते जो कि रमण थे॥

४४

वह मारीचि इन्हीं के घर में, अग्निसह्य अवतरित हुआ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का, मिथ्या मत स्फुरित हुआ॥

४५

सनत्कुमार स्वर्ग में पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस।
सात सागरों तक सुख भोगा, चख पुण्यों का मधु-रस॥

त्रिदंडी साधु अग्निभूति

४६

सनत्कुमार स्वर्ग से चय कर, मन्दिर नाम नगर में।
अग्निभूति यति हुआ त्रिदंडी, गौतम द्विज के घर में॥

४७

मिथ्या शास्त्रों का अध्ययन, कर ऐकान्तिक फैलाया।
आयु पूर्ण कर पंचम स्वर्गे, पाई देव की काया॥

४८

होता है सम्यक्त्व न जब तक, तब तक सारे जप-तप ।
भले स्वर्ग का वैभव दे दें, कर्म न सकते पर खप ॥

महा मिथ्यात्वी भारद्वाज ब्राह्मण

४९

मातु मन्दिरा ब्राह्मणी थी, जनक सांकलायन थे ।
भारद्वाज नाम के उनके, सुत बहुश्रुत ब्राह्मण थे ॥

५०

जो कि स्वर्ग से चय कर आये, पूर्व संस्कारों वश ।
ऐकान्तिक मिथ्यात्व प्रचारक, बने त्रिदंडी तापस ॥

५१

फल स्वरूप देवायु बंध कर, स्वर्ग पाँचवें पहुँचे ।
मंद कषायी बाल-तपस्वी, सुरगति में ही पहुँचे ॥

भव भ्रमण के भँवर-जाल में फँसा हुआ मारीचि का जीव

५२

अपना मूल स्वभाव भूल, बहिरातम भटक रहा है ।
वह अनादि से चारों गति, में औंधा लटक रहा है ॥

५३

नर्क-निगोद-तिर्यक्-सुर गति में, होकर त्रस-स्थावर ।
साठ लाख पर्यायें पाता, है मारीचि बराबर ।।

५४

वचनातीत सहे दुख इसने, स्पर्शेन्द्रिय होकर ।
जन्म-मरण फिर हुये अठारह, एक श्वाँस के भीतर ।।

५५

आलू-शकरकंद-लहसुन में, फिर उपजे फिर और मरे ।
एक देह में ही अनन्त अक्षर, अनन्तवाँ ज्ञान धरे ।।

५६

सिद्धों का सुख एक ओर था, उससे उतना ही विपरीत ।
दुख निगोद में नरकों से भी, अधिक सहा था वचनातीत ।।

५७

आर्त-रौद्र मोहित परिणामों, के फल नरकों में भोगे ।
खून-पीव की वैतरिणी में, पहिन वैक्रियक चोगे ।।

५८

एक साथ विच्छू सहस्र मिल, मानो डंक मारते हों ।
सेमर-तरु के पत्ते-पत्ते, भी तलवार धारते हों ।।

५९

आपस में लड़ टुकड़े-टुकड़े, किये देह के पारावत ।
ले समुद्र की प्यास बूंद को, भी तरसा वह मिथ्यामत ।।

६०

जन्म-मरण के साठ लाख, तक कष्ट अनन्ते काल सहे ।
शुभ कर्मों से शांडलीक के, स्थावर द्विज बाल रहे ।।

६१

आयु पूर्ण कर स्वर्ग चतुर्थे, पाई विप्र ने सुर पर्याय।
क्योंकि स्वर्ग-सुख दे सकती है, विन समकित ही मंद कषाय॥

६२

पृथ्वी-जल की-अग्नि-वायु की, वनस्पती की वादर काय।
अपर्याप्त-पर्याप्त रूप से, धारी असंख्यात पर्याय॥

६३

पृथ्वी कायिक में भोगी, उत्कृष्ट आयु वाईस हजार।
जल कायिक में भोगी थी, उत्कृष्ट आयु पुनि सात हजार॥

६४

उम्र तीन दिन-रात रही, कई वार अग्नि कायिक होकर।
वायु काय का जीव हुआ, यह तीन हजार वर्ष सोकर॥

६५

दस हजार वर्षों तक थी, प्रत्येक वनस्पति की उच्चायु।
ईधन - राधन - काटन - छेदन, भेदन दुःख सहे निरुपायु॥

६६

लट-चींटी-भँवरा विकलत्रय, द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय के जीव।
चिन्तामणि सम दुर्लभ है त्रस, जिसमें रह दुख सहे अतीव॥

६७

कुचले पीसे गये प्रवाहित, हुये अग्नि में भस्मीभूत।
खाये गये पक्षियों द्वारा, सहे दुःख मारीचि प्रभूत॥

६८

पंचेन्द्रिय जव हुआ असैनी, हित अनहित का नहीं विवेक।
ज्ञान अल्प था—मोह तीव्र था, धर्म हीन दुख सहे अनेक॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय पशु होकर, लघु जीवों का किया शिकार।
स्वयं दीन कातर होने पर, वना सशक्तों का आहार॥

७०

छेदन - भेदन—क्षुधा - पिपासा, की पीड़ायें क्या कहना ?।
सर्दी - गर्मी—वोझा ढोना, वध वन्धन परवश सहना॥

७१

पुण्य योग से नर भव पाया, किन्तु न पाई मानवता।
इसीलिये दुख सहे अनेकों, गर्भ जन्म एवं शिशुता॥

७२

वालकपन में—खेलकूद में, सारा समय व्यतीत हुआ।
भोग विलासों भरी जवानी में, कुछ भी न प्रतीत हुआ॥

७३

बूढ़ी सब हो गईं इन्द्रियाँ, किन्तु वासना रही जवान।
मरघट में पग लटक गये पर, आया नहीं धरम का ध्यान॥

७४

इस प्रकार मारीचि जीव का, क्रमशः हुआ ह्रास पर ह्रास।
हीन हीन पर्यायों का है, लज्जा जनक निम्न इतिहास॥

७५

डेढ़ हजार अकौआ की थीं, सीप योनि अस्सीय हजार।
नीम और केला तरु की थीं, सहस वीस नव क्रम अनुसार॥

७६

तीस शतक चन्दन तरु एवं, पंच कोटि भव हुये कनेर।
वेश्या साठ हजार वार वन, पांच कोटि तन धरे अहेर॥

७७

वीस कोटि अवतार गजों के, गर्दभ पशु के साठ करोड़।
स्वाँग श्वान के तीस कोटि थे, साठ लाख क्लीवों के जोड़॥

७८

वीस कोटि नारी पर्यायें, रजक वृत्ति की नव्वे लक्ष।
मार्जार एवं तुरगी के, वीस आठ कोटिक क्रम कक्ष॥

७९

साठ लाख पर्यायों में तो, गर्भपात कर वारम्वार।
उपजे राजाओं के पद पर, उपर्युक्त गिनती अनुसार॥

८०

दानादिक के पुण्य फलों से, भोगभूमि अवतार हुआ।
अस्सी लाख वार स्वर्गों में, क्रमश देवकुमार हुआ॥

८१

ह्रास विकासों के झूलों पर, झूला वह नीचे ऊपर।
किन्त मुक्ति का मार्ग न पाया, रत्नत्रय पथ पर चल कर॥

८२

इस प्रकार मारीचि जीव ने, कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा।
क्योंकि कभी भी उसने निज से, सम्यक् नाता नहिं जोड़ा॥

युवराज विश्वनंदी

८३

भ्रमते-भ्रमते राजगृह में, हुआ विश्वनन्दी युवराज।
जयिनी विश्वभूति नृप के घर, वह मारीचि जीव सिरताज॥

८४

इसी विश्वनन्दी के थे, बैसाखभूति सज्जन पितृव्य ।
उसका सुत बैसाखनन्द था, भाई चचेरा घोर अभव्य ।।

८५

विश्वभूति मुनि हुये अतः, बैसाखभूति संरक्षक थे ।
अल्पायुष्क विश्वनन्दी के, वे न्यायी अभिभावक थे ।।

८६

उद्धत हो बैसाखनन्द ने, उपवन पर अधिकार किया ।
वृक्ष उखाड़ विश्वनन्दी ने, उस पर अतः प्रहार किया ।।

८७

बच कर भागा चढ़ा खंभ पर, वह बैसाखनन्द भयभीत ।
तोड़ा उसे विश्वनन्दी ने, हुई साथ ही आत्म-प्रतीत ।।

८८

विश्वनन्दी बैसाखभूति ने, नग्न दिगम्बर धारा भेष ।
कठिन तपस्याओं के कारण, काया जर्जर हुई विशेष ।।

८९

आहारार्थ एक दिन निकले, विश्वनन्दि मुनि मथुरा ओर ।
आकर एक बैल नें तव ही, उन्हें गिराया देकर जोर ।।

९०

राजमहल की छत पर से, बैसाखनन्द ने देखा दृश्य ।
अट्टहास उपहास सहित वोला, व्यंगोक्तियाँ अवश्य ।।

९१

मुनि निन्दा के घोर पाप से, पाया उसने सप्तम नर्क ।
मंद कषायी विश्वनन्दि मुनि, ने भी पाया दशवाँ स्वर्ग ।।

९२

मुनि वैखाखभूति भी मर कर, उनके साथी देव हुये ।
तीनों प्राणी निज कर्मों के, फल भोक्ता स्वयमेव हुये ।।

९३

विश्वनन्दि वैशाखभूति ने, भोगे स्वर्गिक सौख्य अतीव ।
नारायण वलभद्र रूप में, जन्मे क्रमशः दोनों जीव ।।

त्रिपृष्ठ नारायण

९४

पोदनपुर के नृपति प्रजापति, 'मृगा' "जया" ये दो वनिता ।
क्रमशः इनकी माताऐं थीं, और प्रजापति पूज्य पिता ।।

९५

वह विशाखनन्दी भी नाना, दुर्गतियों को करके पार ।
अश्वग्रीव प्रतिनारायण हो, जन्मा अलकापुरी मझार ।।

९६

गिरि विजयार्द्ध दिशा उत्तर में, ज्वलनवटी था एक नरेश ।
'स्वयंप्रभा' उसकी पुत्री थी, रूप और लावण्य विशेष ।।

९७

श्री त्रिपृष्ठ नारायण से उस, स्वयंप्रभा का हुआ विवाह ।
अश्वग्रीव प्रतिनारायण को, हुई ज्वलनजटी से डाह ।।

९८

वेचारे उस ज्वलनजटी पर, अश्वग्रीव चढ़कर आया ।
मानो सन्मुख देख शेर को, मृग वेचारा घवराया ।।

९९

किन्तु न्याय के साक्ष्य हेतु, आये नारायण वलभद्र ।
की सहायता ज्वलनजटी की, अश्वग्रीव से छीना चक्र ॥

१००

प्रतिनारायण का वध करके, बने त्रिपृष्ठ त्रिखंडाधीश ।
किन्तु नियम से नरक जायेंगे, नारायण यों कहें मुनीश ॥

१०१

एक रात्रि गाना सुनते थे, अपने शय्यापाल समीप ।
सुनते सुनते निद्रा के वश, हुये नितांत त्रिपृष्ठ महीप ॥

१०२

गायक शय्यापाल किन्तु था, गाने में इतना तल्लीन ।
राजा के निद्रित होने की, खवर न उनको हुई स्वाधीन ॥

१०३

स्वर-लहरी से निद्रा टूटी, नहीं क्रोध का पारावार ।
गायक के कानों में डाली, गर्म गर्म शीशे की धार ॥

१०४

बव्हारम्भ परिग्रह से या, विषय भोग परिणाम स्वरूप ।
आर्त-रौद्र ध्यानों से मर कर, गया सातवें नर्क कुभूप ॥

त्रिपृष्ठ नारायण का जीव क्रूरसिंह की पर्याय में

१०५

कई सागर पर्यन्त नर्क के, दुःख सहे उसने घनघोर ।
निकल वहाँ से हुआ शेर, वह हिंसक पशु गंगा की ओर ॥

१०६

फल स्वरूप वह प्रथम नरक, में पहुँचा पुनःआयु कर पूर्ण ।
अहँकार मिथ्यात्व आदि सव, विधि के द्वारा होते चूर्ण ।।

१०७

किन्तु भव्य जीवों को निश्चय, सम्यक् दर्शन होता है ।
इनें गिने भव शेष अर्द्ध, पुग्दल परिवर्तन होता है ।।

१०८

कल्याण मूर्ति सम्यक् दर्शन, पशु पंचेन्द्रिय पा सकता है ।
चेतन का भान-ज्ञान करके, तप से शिवपुर जा सकता है ।।

क्रूर सिंह की निकट भव्यता

१०९

प्रथम नर्क से निकल पुनः, वह सिंह महा विकराल हुआ ।
हिमगिरि की भीषण अटवी में, खग-मृग सव का काल हुआ ।।

११०

एक दिवस वह क्रूर सिंह मृग, पर चढ़ने ही वाला था ।
दो चारण ऋद्धिधारियों नें, त्योंही जादू कर डाला था ।।

१११

जय अजितञ्जय जय अमिततेज, मुनि करुणा के अवतार महा ।
सिंह से वोले-ठहरो ! ठहरो !!, तुम को वध का अधिकार कहां ? ।।

११२

पर्याय मूढ़ता के द्वारा तुम, तो अनादि से भटक रहे ।
तुम आतम-विपर्यय होकर ही, चहुँगति में औंधे लटक रहे ।।

११३

अव अपनी सम्यक् दृष्टि करो, अपने स्वरूप को पहिचानो ।
त्रैलोक्य धनी तुम 'महावीर', यह दिव्य दृष्टि द्वारा जानो ।।

११४

मिथ्यात्व सरीखा पाप नहीं, सम्यक्त्व सरीखा धर्म नहीं ।
शोभा तुम को दे सकता है, इस हिंसा का दुष्कर्म नहीं ।।

११५

श्री ऋषभदेव के युग से ले, भव-भव मिथ्यात्व रचा तुमने ।
पाखण्डवाद को फैला कर, वस आत्म वंचना की तुमने ।।

११६

अव सम्यक् दर्शन धारण कर, श्रावक के व्रत स्वीकार करो ।
हे मृगपति ! पशु निर्दोषों का, मत आगे अव संहार करो ।।

११७

सम्यक्दर्शन सा सुखकारी, तीनों लोकों तीनों कालों ।
मिल सकता कोई धर्म नहीं, सुन लो हे भटके जग वालो ।।

११८

मुनियों के उपदेशामृत सुन, आँखों से आँसू टपक पड़े ।
प्रायश्चित पापों का करके, मृगपति चरणों में लुढ़क पड़े ।

११९

मुनि वचनों पर श्रद्धा करके, आत्मा का ज्ञान विवेक जगा ।
सम्यक् दृष्टी के दर्शन से लो, युग-युग का मिथ्यात्व भगा ।।

१२०

अव उदासीन श्रावक सा रह, वह अपना समय विताता था ।
अपने भव-भव के कृत कर्मों पर, वार वार पछताता था ।।

सिंहकेतु देव

१२१

सम्यक्त्व सहित जब मरण किया, सौधर्म-स्वर्ग का देव हुआ ।
थी सिंहकेतु संज्ञा उसकी, अरिहंत भक्त स्वयमेव हुआ ।।

१२२

अभिषेक जिनेश्वर का करता, वह सम्यक् दृष्टी भव्य महा ।
चैत्यों की नित्य वन्दना से, वह जगा रहा भवितव्य वहाँ ।।

१२३

कनकोज्ज्वल राजकुमार

१२४

सौधम स्वर्ग से चय कर फिर, कनकोज्ज्वल राजकुमार हुआ ।
देश कनकप्रभ नृपति पंख, विद्याधर घर अवतार हुआ ।।

१२५

निर्ग्रन्थों के उपदेशों से, हुआ प्रभावित वैरागी ।
सम्यक् तप प्रभाव से पाया, सप्तम स्वर्ग महाभागी ।।

राजा हरिषेण

१२६

आयु पूर्ण कर वह सम्यक्त्वी, अवधपुरी युवराज हुआ ।
वज्रसेन सुत हरीषेण नामक, श्रावक सिरताज हुआ ।।

१२७

श्रुत सागर मुनि से दीक्षित हो, यथाकाल निर्ग्रन्थ हुआ ।
रत्नत्रय तप से प्रशस्त, उनके द्वारा शिव पंथ हुआ ।।

१२८

धर्म और पुण्यों के फल से, प्राप्त हुआ तव स्वर्ग दशम ।
सौख्य पूर्ण आयुष्य अन्त में, हुये चक्रवर्ती उत्तम ।।

चक्रवर्ती प्रियमित्रकुमार

१२६

पुण्डरीकणी है विदेह में, उसमें ही प्रियमित्रकुमार ।
सहस छियाणव राजरानियों, के थे चक्रवर्ति भरतार ।।

१३०

कोटि अठारह अश्व और गज, थे जिनके चौरासी लाख ।
मुकुटवद्ध राजा सेवक थे, सहस तीस द्वय आगम साख ।।

१३१

एक समय यह चक्रवर्ति नृप, पहुँचे समशरण में थे ।
वैदेही जिन क्षेमंकर के, पावन-पुण्य चरण में थे ।।

१३२

संसार देह भोगों से होकर, वीतराग तप धारा ।
स्वर्ग द्वादशम चक्रवर्ति ने, पाया उसके द्वारा ।।

युवराज नन्द

१३३

आयु पूर्ण कर चय कर आये, छत्राकार नगर में ।
नन्दिवर्द्धनम् वीरवती दम्पति, के पावन घर में ।।

१३४

नन्द नाम युवराज हुआ वह, शुभ सम्यक्त्वी श्रावक ।
'प्रोष्ठिल' मुनि से दीक्षा धारी, तज विषयों की पावक ।।

१३५

अर्हत् केवली पाद-मूल में, भाई सोलह कारण ।
भावनाएँ जो पुण्य-प्रकृति का, सर्व श्रेष्ठ है साधन ।।

१३६

तीर्थङ्कर पद की महिमा को, गा न सकें जब गणधर ।
सुरपति-सरस्वती फणपति भी, पूजें जिनको हरिहर ।।

१३७

ऐसी पुण्य प्रकृति का बन्धन, करके काया त्यागी ।
स्वर्ग षोडसम् अच्युत में, वे इन्द्र हुये बडभागी ।।

१३८

निरत तत्त्व चर्चा में रहकर, आयु पूर्ण होने पर ।
'महावीर श्री' सिद्धारथ सुत, आये त्रिशला के उर ।।

त्रिशलानन्दन का गर्भावतरण

१३९

अढ़ाई हजार वर्ष पहिले जो, आध्यात्मिक सत्क्रान्ति हुई थी ।
परम अहिंसक 'महावीर श्री' द्वारा जग में शान्ति हुई थी ।।

१४०

प्रियाकारिणी 'श्री-सिद्धारथ' जिनके जननी और जनक थे ।
वैशाली गणतंत्र राज्य के, वे न्यायी अनुपम शासक थे ।।

१४१

अच्युत स्वर्ग से उतर इन्द्र, प्रियकारिणि की कुक्षि पधारे ।
आषाढ़ी षष्ठी शुक्ला को हुये, पूर्ण गर्भोत्सव सारे ॥

१४२

पन्द्रह महिने तक देवों ने, पृथिवी पर वरसाये हीरे ।
माता ने देखे शुभ सोलह, सपने सार्थक धीरे धीरे ॥

१४३

स्वर्गों की छप्पन कुमारियां, जननी की परिचर्या करतीं ।
विविध पहेली बूझ बूझ कर, गर्भ-भार माता का हरतीं ॥

वीरश्री का मांगलिक जन्म महोत्सव

१४४

चैत्र सुदी शुभ त्रयोदशी को, हुआ जन्म कल्याणक भारी ।
इन्द्रों द्वारा पांडुक-वन में, अभिषेकों की हुई तैयारी ॥

१४५

इन्द्राणी ने मायामय शिशु, सौर-भवन में सुला दिया था ।
इन्द्रों ने मिल सपरिवार शिशु, वर्द्धमान अभिषेक किया था ॥

वर्द्धमान श्री के शैशव की वीरोचित क्रीडाएँ तथा

तारुण्य में अनासक्ति

१४६

शैशव सुलभ वाल लीलाएं, लोकोत्तर थीं वर्द्धमान कीं ।
संजय-विजय मुनीश्वर चारण, की शंकायें समाधान कीं ।।

१४७

ज्यों ही शिशु को देखा उनने, उन्हें तत्त्व का वोध हो गया ।
वर्द्धमान का नाम करण तव, सन्मति से संवोध हो गया ।।

१४८

अष्ट वर्ष के वालक सन्मति, थे सम्यक्त्वी अणुव्रत धारी ।
समचतुस्र संस्थान देह की, धूम त्रिलोकों में थी भारी ।।

१४९

'संगम' नामक एक देव तव, शक्ति परीक्षा लेने आया ।
महा भयंकर नाग रूप धर, उसी वृक्ष पर जा लिपटाया ।।

१५०

जिस पर खेल रहे थे सन्मति, साथी संयुत अंड-डावरी ।
उतरे फण पर निडर पैर रख, देव विक्रिया हुई वावरी ।।

१५१

अत: तभी से वर्द्धमान शिशु, सन्मति महावीर कहलाये ।
वश में किया मत्त हाथी जव, तव से नाम वीर का पाये ।।

१५२

धर्म नाम पर जीवित नर-पशु, वैदिक युग में होमे जाते ।

स्वार्थ लोभ वश पंडों द्वारा, टिकट स्वर्ग के बांटे जाते ॥

१५३

नग्न नृत्य देखा हिंसा का, धर्म नाम पर आत्म भ्रान्ति को ।
देखा करुण-किशोर वीर नें, अत: जगाया लोक क्रान्ति को ॥

१५४

उसी क्रान्ति के फल स्वरूप ही, आज न दिखती वैदिक हिंसा ।
महावीर से गांधी युग तक, जीवित है सत् शान्ति अहिंसा ॥

१५५

शूद्रों के प्रति घोर घृणा का, छुआछूत का भूत भगाया ।
ऊँच-नीच का भेद हटा कर, नारी का स्वातन्त्र्य जगाया ॥

१५६

घोर परिग्रह स्वार्थवाद नें, गडवड कर दी सभी व्यवस्था ।
धर्म और नैतिकता महँगी, भ्रष्टाचार हुआ था सस्ता ॥

१५७

उस युग का यह दृश्य देख कर, तरुण वीर ने दृढ़ प्रण कीना ।
और लोक हित तथा आत्म-हित, करनें ब्रह्मचर्य व्रत लीना ॥

१५८

लावण्य अलौकिक था किशोर का, आये शत विवाह प्रस्ताव ।
माँ का आग्रह हुआ पराजित, देख वीर का शील स्वभाव ॥

विरागी वीर का दीक्षा तथा तप कल्याणक

१५९

युवा वीर ने तीस वर्ष तक, सफल संभाला युवराजत्व ।

वाल ब्रह्मचारी गृहस्थ रह, देखा जग का नि:सारत्व ॥

१६०

मगसिर कृष्णा दशमी के दिन, राज-पाट वैभव ठुकरा कर ।
वीर-विरागी नें तन-मन से, दिगम्वरत्व का दीप जलाकर ॥

१६१

ॐ नमः सिद्धेभ्यः पूर्वक केशों, का लुंचन कर डाला ।
लौकान्तिक दीक्षा कल्याणक, पर लाये अनुमोदन माला ॥

१६२

ज्ञातृखंड नामक अरण्य की ओर, चली चन्द्रप्रभा पालकी ।
मानव सुर गण द्वारा वाहित, भावलिङ्ग मुनि वीर वाल की ॥

१६३

आत्म स्वभाव साधना वल से, वारह वर्ष किया तप भारी ।
अट्ठाईस मूल गुण पालन करते, चतुर ज्ञान के धारी ॥

उपसर्ग एवं परीषह विजयी महाश्रमण महावीर

१६४

मासों के उपवासी प्रभु के, आहारों की सविधि आकड़ी ।
परीपहों की उपसर्गों की, सम सहिष्णुता वहुत कड़ी ॥

१६५

चले उसी वन वीर जहाँ वह, सर्प चंडकौशिक रहता था ।
जहरीली फुंकारों से जो, दावानल वनकर दहता था ॥

१६६

क्रोधित होकर ज्यों ही उसने डसा, वीर-प्रभु के मृदु-पग में ।
लगी निकलने धार दूधिया, त्यों ही अंगूठे की रग में ।।

१६७

सौंप गया वह पशु गण अपने, महावीर को चरवाहा था ।
आकर वापिस ले लूंगा मैं, उसने ऐसा ही चाहा था ।।

१६८

किन्तु मौन ध्यानस्थ वीर को, इन वातों से था क्या मतलव ।
अतः दुष्ट ने कर्ण युगल में, कीला ठोक दिया ही था तव ।।

१६९

ग्यारहवाँ 'भव' रुद्र वीर के, तप की कठिन परीक्षा लेने ।
उज्जयिनी के श्मशान में, जोर जोर से लगा गरजने ।।

१७०

विविध भयावह विद्रूपों से, तथा सहस्त्र सेनाओं द्वारा ।
शेर - वाघ - चीते - मायावी, आंधी - वर्षा - मूसल धारा ।।

१७१

कान - खजूरे - विच्छू - विषधर, डाँस आदि तन पर लिपटाये ।
रुद्र देव कृत उत्पातों से, किन्तु 'वीर' नहिं रंच डिगाये ।।

१७२

धीर-वीर-गंभीर सौम्य थी, शान्त सहिष्णु वीर की मुद्रा ।
आत्म शक्ति से हार गई थी, क्षुद्र रुद्र की माया रुद्रा ।।

१७३

रुद्र रौद्र परिणामों द्वारा नरक, आयु का पात्त हो गया ।
सु-विख्यात अति वीर नाथ का, तप कर स्वर्णिम गात्त हो गया ।।

१७४

लोक विजेता महामल्ल सब, काम-सुभट योद्धा से हारे ।
रंभा और तिलोत्तमाओं पर, हरिहर ब्रह्मादिक भी वारे ।।

१७५

तप से विचलित करने प्रभु को, अप्सराओं ने हाव-भाव से ।
खूब रिझाया महावीर को, हार गई पर ब्रह्म-भाव से ।।

१७६

परं ब्रह्म में लीन तपस्वी, डावांडोल हुआ नहिं किञ्चत् ।
प्रलय-पवन से हिलें शैल पर, मन्दराद्रिर्नहिंचलितकदाचित् ।।

पद दलिता चंदना के हाथों महावीरश्री द्वारा आहार ग्रहण

१७७

वैशाली गणतंत्र, संघ के, अधिनायक राजा चेटक थे ।
महावीरश्री के मातामह, वे तो जनकसुता-सप्तक थे ।।

१७८

राजकुमारी सती चंदना, कन्या थी षोडस वर्षीया ।
अपहृत एवं पितृ वियुक्ता, त्रस्ता सुन्दरि अति कमनीया ।।

१७९

क्रीता दासी केश मुंडिता, दलिता दुखित वन्दिनी थी ।
खाने को कोदों के दाने, सेठानी से पाती थी ।।

१८०

पण् मासिक उपवासी प्रभुवर, आहारार्थ निकलते हैं ।
उपर्युक्त अनुसार आखडी, की विधि लेकर चलते हैं ।

१८१

उस अभागिनी दासी ने, जब महा श्रमण को पडगाहा ।
टूटीं जंजीर गुलामी की, देवों ने सौभाग्य सराहा ॥

१८२

कोदों के दाने खीर बने, फिर निरन्तराय आहार हुआ ।
पंचाश्चर्य चन्दन दासी का, सचमुच पतितोद्धार हुआ ॥

अरहंत परमेष्ठी सर्वज्ञ महावीर

१८३

द्वादश तप द्वादश वर्षों तक, करते रहे श्रमण भगवान् ।
शुक्ल ध्यान से क्षपक श्रेणि, चढ़ पहुँचे बारहवें गुण थान ॥

१८४

प्रकृति तिरेसठ कर्म घातिया, किये नष्ट अरिहंत हुये ।
त्रैकालिक त्रैलोक्य विलोकी, वे केवलि भगवंत हुये ॥

१८५

ऋजुकूला सरिता के तट पर, महावीर सर्वज्ञ बने ।
बैसाखी शुक्ला दशमी को, देवोत्सव भी हुये घने ॥

वीरश्री की विराट् धर्म-सभा की अलौकिक छटा

१८६

देवेन्द्रों द्वारा रचित सभा, मंडप वैभव युत समवशरण ।
त्रय गोलाकार प्रकोट सहित, विस्तृत सर्वोदय का कारण ॥

१८७

मानाङ्गण में चौपथ चौदिशि, जिन प्रतिमा मानस्तम्भ खड़े ।
उनके आगे सरवर सुन्दर, पुनि प्रथम कोट में रजत जड़े ॥

१८८

खाई को घेरे वन-उपवन पुनि, दिशा चतुर्दिक ध्वजा पीठ ।
फिर स्वर्णिम कोट दूसरा है, द्वारों पर भवनों के किरीट ॥

१८९

पुनि कल्पवृक्ष वन में मुनि सुर, के बने हुये हैं सभा-भवन ।
है मणिमय कोट तृतीय रचा, द्वारों पर कल्पों के सुर-गण ॥

१९०

पुनि लता-भवन स्तूप आदि, श्री मंडप क्रमशः तने हुये ।
है केन्द्र स्थल में गंधकुटी, चहुँ दिशा कक्ष हैं बने हुये ॥

१९१

इन बारह कक्षों में क्रमशः, मुनि कल्पवासिनी आर्यिकाएँ ।
ज्योतिप व्यन्तर भवनत्रिक, की हैं समासीन देवाङ्गनाएँ ॥

१९२

फिर देव-भवन व्यन्तर ज्योतिप, अरु कल्पवासि नर पशु के हैं ।
ये सभी सभ्य श्रोता बन कर, सन्मति वाणी को सुनते हैं ॥

महावीरश्री के प्रमुख गणधर का आविर्भाव

१९३

उस गंधकुटी कमलासन पर, हैं अन्तरीक्ष श्री वर्द्धमान ।
हैं समवशरण के जीव सभी, दिव्यध्वनि श्रवणातुर महान ॥

१६४

सर्वज्ञ केवली हुये वीर, फिर भी दिव्यध्वनि नहीं खिरी ।
छियासठ दिन यद्यपि वीत गये, फिर भी मौनी हैं वीर श्री ॥

१६५

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र शीघ्र, इसका रहस्य जव जान चुका ।
तव वृद्ध विप्र का स्वाँग वना, गुरु कुलाचार्य के निकट रुका ॥

१६६

जो पंच शतक निज शिष्यों को, वेदान्त पढ़ाया करता था ।
निज विद्या-प्रतिभा का मिथ्या, वस दंभ सदा ही भरता था ॥

१६७

उस युग ने लोहा माना था, उसके अकाट्य शास्त्रार्थों का ।
था याज्ञिक क्रिया कांड वेत्ता, ज्ञाता था नाना अर्थों का ॥

१६८

हो ज्ञान अल्प अथवा अतिशय, पर यदि उसमें सम्यकता है ।
तो वन्दनीय वह देवों से, वरना वह कोरा मिथ्या है ॥

१६६

था 'इन्द्रभूति' गौतम वहुश्रुत, आचार्य किन्तु मिथ्यात्वी था ।
पर गणधर होने योग्य पात्र, वस एक मात्र वह द्विज ही था ॥

२००

जिनवर वाणी जो झेल सके, उस युग का ऐसा योग्य पात्र ।
सौधर्म इन्द्र की प्रज्ञा में, था इन्द्रभूति ही एक मात्र ॥

२०१

इसलिये वृद्ध का स्वाँग वना, वह इन्द्र विप्र को ले आया ।
उस समवशरण की ओर जहाँ, था मानथम्भ उन्नत काया ॥

२०२

फिर क्या था गौतम ज्ञानी का, मिथ्या-मद सारा चूर हुआ।
स्तम्भ देख स्तम्भित था, मिथ्यात्व अंधेरा दूर हुआ॥

२०३

सम्यक्त्व जगा निर्ग्रन्थ हुआ, सन्मति का गणधर बन पहला।
श्रुत द्वादशांग में भाव गूंथ, जिनवाणी अमृत रहा पिला॥

तीर्थंकर भगवान् महावीर के अमर संदेश

२०४

जिस दिवस दिव्यध्वनि खिरी, प्रथम वह सावन कृष्णा थी पावन।
तिथि महावीर के शासन की, प्रतिपदा मांगलिक मन भावन॥

२०५

विपुलाचल से दिया गया, जो प्रथम देशना का सन्देश।
गौतम गणधर ने गूंथा है, उसको ही सामान्य-विशेष॥

२०६

वीतरागता परम अहिंसा, स्याद्वाद सर्वोदय ही।
कर्मवाद निःसंगवाद है, द्वादशांग वाणी मय ही॥

२०७

पर द्रव्यों से भिन्न सर्वथा, ज्ञान ज्योति हर चेतन है।
स्वाभाविकता वीतरागता, वैभाविकता बन्धन है॥

२०८

जीने का अधिकार सभी को, स्वयं जियो जीने भी दो।
शेर गाय को एक घाट पर, करुणा-जल पीने भी दो॥

२०६

आत्मा को प्रतिकूल लगे जो, औरों को भी वह प्रतिकूल ।
नहीं चुभाओ अतः किसी को, कभी दुःख हिंसा के शूल ॥

२१०

अपने वीतराग चेतन में, राग-द्वेष का प्रादुर्भाव ।
खुद की हिंसा करने वाला, कहलाता है हिंसक भाव ॥

२११

उसी भाव हिंसा के द्वारा, औरों की हिंसा करना ।
संकल्पी उद्यमी विरोधी, आरम्भी हिंसा कहना ॥

२१२

है अनन्त गुण सत्ता वाला, जड़ चेतन प्रत्येक पदार्थ ।
हर पहलू से उसे देखना ही, है सम्यग्दृष्टि यथार्थ ॥

२१३

स्याद्वाद का सत्य कथञ्चित्, मुख्य गौणता पर निर्भर ।
पूरक बन कर वहा रहा है, धर्म समन्वय का निर्झर ॥

२१४

साम्यवाद या सर्वोदय का, जीता जगता उदाहरण ।
था समाजवादी रचना मय, महावीर का समवशरण ॥

२१५

भेद भाव से भिन्न आत्मा, पृथक लोक व्यवहारों से ।
परमातम का रूप लिये, निश्चयतः विविध प्रकारों से ॥

२१६

जैसी करनी वैसी भरनी, यही कर्म का नियत विधान ।
पुण्य-पाप के फल सुख-दुःख हैं, जानो जग को कर्म प्रधान ॥

२१७

केवल ज्ञाता-दृष्टा रह कर, पुण्य-पाप के देखो खेल ।
हर्ष-विषादों की लहरों को, समता-सागर बन कर झेल ।।

२१८

अष्ट कर्म पर विजय प्राप्त कर, लेना है उत्तम पुरुषार्थ ।
नहीं बैठना भाग्य भरोसे, कर्मवाद सिद्धान्त यथार्थ ।।

२१९

संग्रह और परिग्रह धन का, है तृष्णा का घृणित स्वरूप ।
पर पदार्थ से भिन्न सर्वथा, परम अकिंचन है चिद्रूप ।।

२२०

आवश्यक्ताओं की मर्यादाओं, से बाहर जाना ।
घोर पाप है यहाँ स्वार्थ, मय विषमताओं का उपजाना ।।

देश-विदेश में वीरश्री की पद यात्राऐं

२२१

अर्हत्केवली वर्द्धमान का, प्रवचन हेतु विहार हुआ ।
वैशाली वाणिज्य ग्राम में, समवशरण तैयार हुआ ।।

२२२

अंग कलिंग सुकौशल अश्मक, मालव हेमांगद पांचाल ।
वत्स दशार्णव सौर देश में, समवशरण था रचित विशाल ।।

२२३

इस चैतन्य क्रान्ति की लहरों, ने युग का प्रक्षाल किया ।
भीगा रस से कोना कोना, लोकत्रय खुशहाल किया ।।

वीर शासन से प्रभावित व्यक्तित्व

२२४

श्रमणोत्तम गौतम इत्यादिक, ग्यारह प्रमुख संघ गणधर थे।
वारिषेण आदिक अट्ठाईस, सहस्र विविध ज्ञानी मुनिवर थे॥

२२५

छत्तीस सहस्र आर्यिकाओं में, सर्व प्रथम थी सती चन्दना।
श्रावक और श्राविका चौलख, करें वीर की सतत वन्दना॥

२२६

श्रावकोत्तम राजा श्रेणिक, बिम्बसार थे संघ अग्रणी।
महिलाओं की संघ नायिका, सम्यक्त्वी थी राज्ञि चेलनी॥

२२७

वीर संघ के समवशरण में, थे शतेन्द्र नर-सुर-विद्याधर।
पशु-पक्षी तिर्यञ्च सभी थे, महावीर स्वामी के अनुचर॥

२२८

राजा श्रेणिक बौद्ध धर्म तज, क्षायिक सम्यक्त्वी हो जाते।
वर्द्धमान के पद-मूल में, भावी तीर्थङ्कर पद पाते॥

२२९

साठ हजार किये प्रभुवर से, प्रश्न उन्होंने समवशरण में।
फल स्वरूप अनुयायी बन कर, भूमण्डल ही गिरा चरण में॥

२३०

एक कूप मंडूक भक्ति वश, कमल पंखुड़ी लेकर आया।
श्रेणिक के गजराज पैर से, कुचल शीघ्र ही सुर पद पाया॥

२३१

विद्युत्चर से चोर तथा, अर्जुनमाली से डाकू निर्दय।
आत्म समर्पण वीर चरण में, करके बने मुनीश्वर निर्भय॥

२३२

श्रावक था आनन्द नाम का, भूमि और पशु-धन का स्वामी।
कर परिमाण परिग्रह का वह, बना वीर प्रभु का अनुगामी॥

२३३

इस प्रकार प्रभु वीतराग के, परम अहिंसा मयी धर्म से।
हुआ प्रभावित सारा ही युग, जिन-शासन के गूढ़ मर्म से॥

महावीर श्री का परिनिर्वाण महोत्सव एवं दीपावली का शुभारम्भ

२३४

तीस वर्ष तक महावीर श्री, ने सब जीवों को संबोधा।
और एक दिन पावापुर के, उपवन में आ योग निरोधा॥

२३५

कार्तिक कृष्ण अमावस की थी, सु-प्रभात वह मंगल बेला।
सिद्धालय में हुआ विराजित, सन्मति प्रभु का जीव अकेला॥

२३६

अष्ट कर्म कर नष्ट सिद्ध पद, पाजाते हैं त्रिशला-नन्दन।
ज्ञान शरीरी सिद्ध प्रभू के, चरण-कमल में शत शत वन्दन॥

२३७

पावन पावापुर की धरती, धन्य धन्य उसका उद्यान।
देवेन्द्रों ने जहां मनाया, कल्याणक उत्सव निर्वान ।।

२३८

मणिमय शिविका में स्थित वह, प्रभु की परमौदारिक देह।
पूजन-अर्चन कीर्ति-सुरभि से, लोक व्याप्त थी निःसन्देह ।।

२३९

अग्निकुमार देव नत मुकुटों द्वारा, प्रकटित हुई कृशानु।
उसके द्वारा दग्ध हुये उनके, कर्पूरी तन परमानु ।।

२४०

फिर विभूति-रज लौकिक जन, के माथों का शृङ्गार वनी।
पावापुर के रम्य जलाशय, का आगे आधार वनी ।।

२४१

रत्नवृष्टि करके देवों ने, पावापुर जगमगा दिया।
कार्तिक कृष्ण अमावश निशिका, मोह महातम भगा दिया ।।

२४२

तव से अव तक लौकिक युग ने, यहाँ मनाई दीपावलियां।
वीर-चरण में इस प्रकार की, सतत समर्पित श्रद्धाञ्जलियां ।।

२४३

केवल ज्ञान मोक्ष लक्ष्मी की, पूजन वर्द्धमान पूजन है।
लौकिक लक्ष्मी की उपासना, भव-भव दुखकारी वन्धन है ।।

वर्द्धसानश्री की सार्थकता

२४४

इन पच्चीस शतक वर्षों में, वदल चुका इतिहास जगत का।
भौतिकता की चकाचौंध में, विस्मृत हुआ नाम भगवत का ॥

२४५

अवसर्पिणि कलिकाल पाचवाँ, इसमें सव कुछ हीयमान है।
वीर-पथ पर चलने वाला, चेतन ही वस वर्द्धमान है ॥

युग-युग को मगल कामनाएँ

२४६

महा गर्भ-कल्याणक धारी, महावीर कल्याण करो।
महा जन्म-कल्याणक धारी, वर्द्धमान भव-त्राण हरो ॥

२४७

दीक्षा-कल्याणक धारक, हे वीर नाथ मंगल कारी।
केवल ज्ञान-भानु प्रकटाओ, हे सन्मति केवल धारी ॥

२४८

परम मोक्ष कल्याणक पथ पर, हे अतिवीर लगा देना।
पंच परम गुरु के वचनों से, भव-भव हमें जगा देना ॥

२४९

पच्चीस शतक वीं यह शताब्दी, युग युगान्त तक रहे अमर।
महावीर का जीवन-दर्शन, अनुप्राणित होवे घर-घर ॥

जिन शासन की कीर्ति पताका
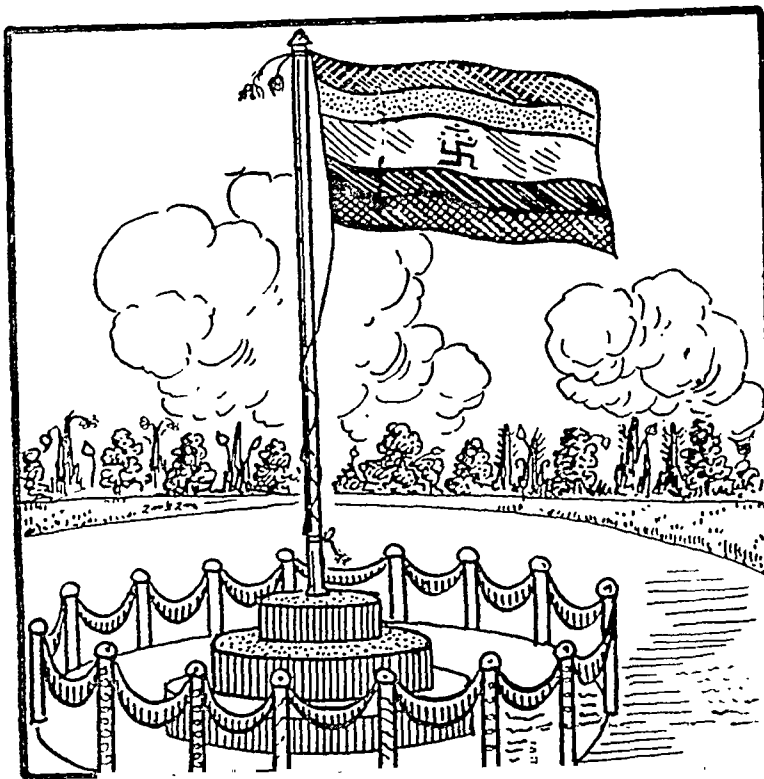
आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान् ।
ऋषभदेव से महावीर तक, करें सु-मंगल गान ।।
पंचरंग पांचों परमेष्ठी, युग को दें आशीष ।
विश्व-शान्ति के लिये झुकावें, पावन ध्वज को शीष ।।
जिन की ध्वनि जैन की संस्कृति, जग जग को वरदान ।
आदि ऋषभ के पुत्र भरत का, भारत देश महान ।।

समर्पण
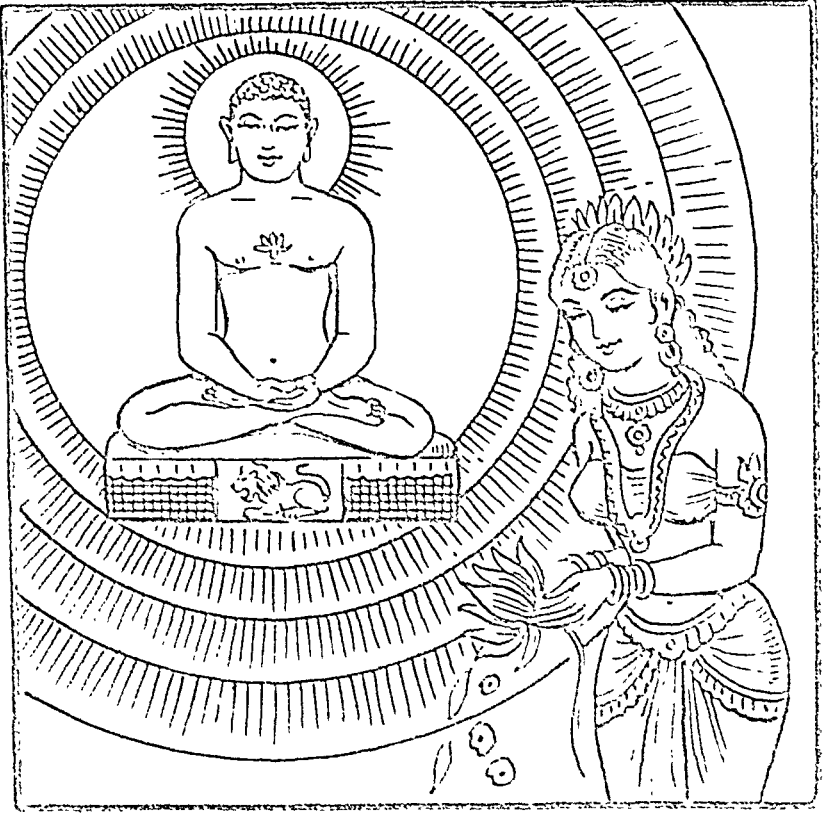
जिनका केवल ज्ञान चराचर, लोकालोक विलोकी दर्पण ।
महावीर श्री चित्र-शतक यह, उनके ही चरणों में अर्पण ।।
यद्यपि यह उपचार मात्र है, तो भी निश्चय जागरूक है ।
वाचक जितना ही मुखरित है, उतना ही यह वाच्यमूक है ।।

अर्चना
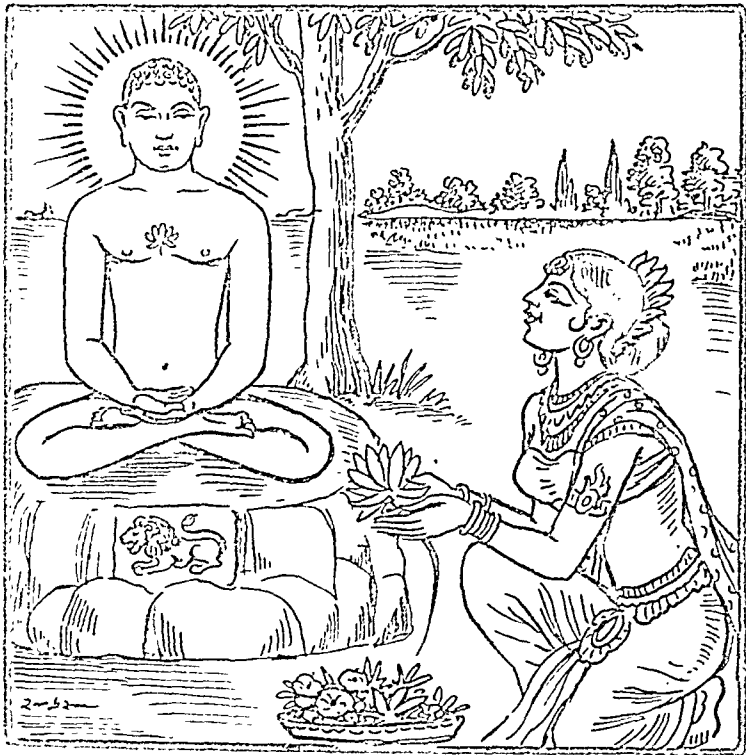
श्रद्धा के मणि मुक्ता कण से स्वर्णिम सजी ज्ञान मंजूषा।
तपश्चचरण पर करै निछावर मंजु रश्मिमयी मंगल ऊषा॥
शुक्ल ध्यान की केवल किरणें केन्द्रीभूत हुई हैं।
तेज मात्र से कर्मावलियां भस्मीभूत हुई हैं॥

जैन प्रतीक तथा वर्द्धमान कीर्ति स्तम्भ
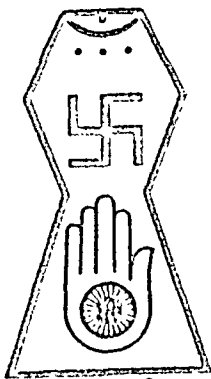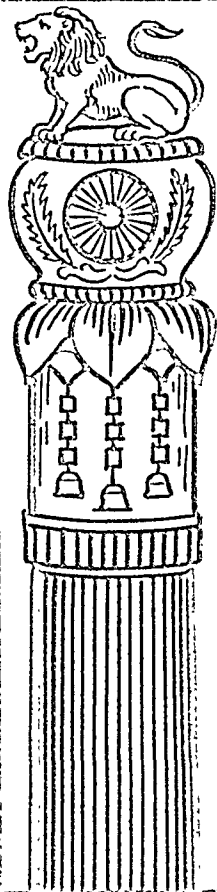
वर्द्धमान की अमर कीर्ति का, स्मारक स्तम्भ यही।
वीतराग-विज्ञान कला का, करता है प्रारम्भ यही ॥
अनेकांत अपरिग्रह एवं, परम अहिंसा की जय हो।
धर्मचक्र सा हो अशोक, ऐवं मृगेन्द्र सा निर्भय हो ॥

वर्द्धमान प्रतीक
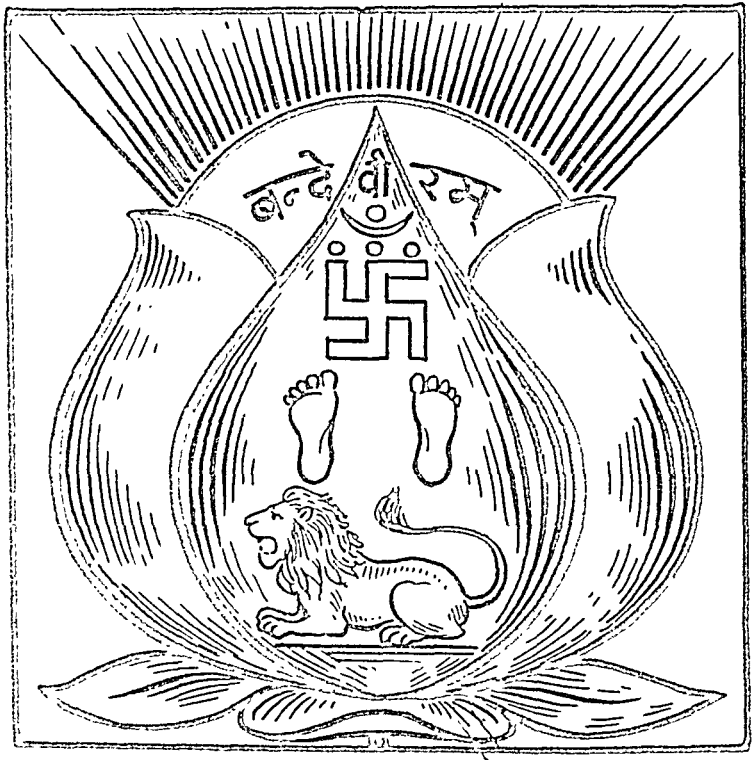
जिनने अपने को जीता हो, उनको महावीर कहते हैं ।
उनके स्वस्तिक चरण कमल युग, मेरे चेतन में रहते हैं ॥
रवि-प्रताप शशि शीतलता का, सिंह वीरता का प्रतीक है ।
महावीर का जीवन-दर्शन, तो नितान्त ही शोभनीक है ॥

वीर-शासन-चक्र
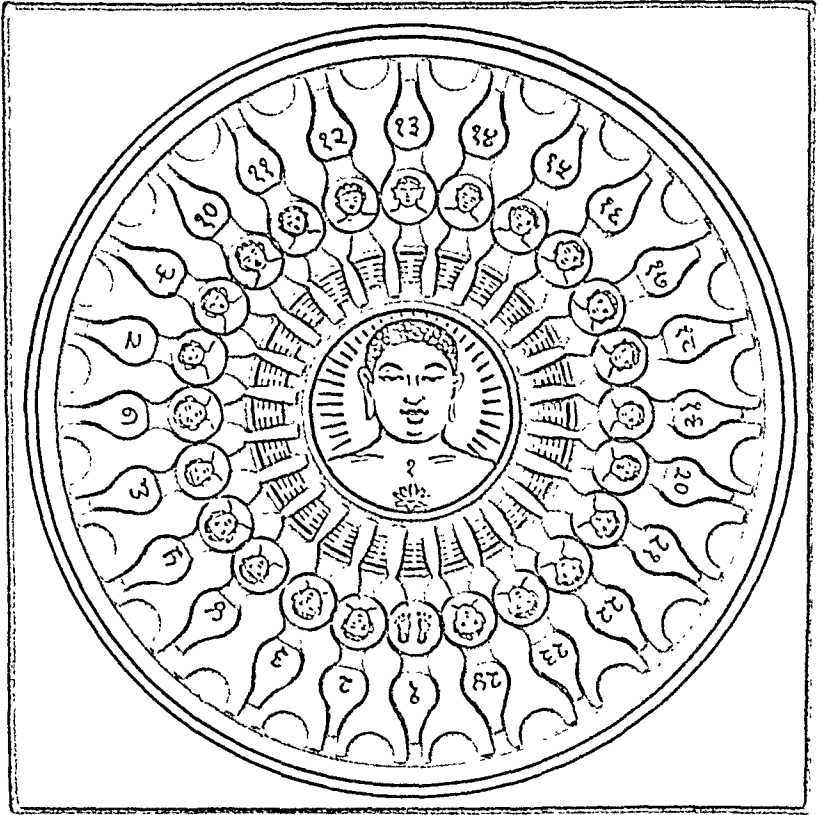
भरत क्षेत्र की कर्मभूमि में, तीर्थंकर होते आये।
वे अनादि से आत्मतत्व का, अनुशासन वोते आये॥
अमर रहें ऐसे जिनशासन, के ये चौवीसों आरे।
आदि और वीरान्त प्रभू के रहें गूँजते जय-नारे॥

धर्म-चक्र
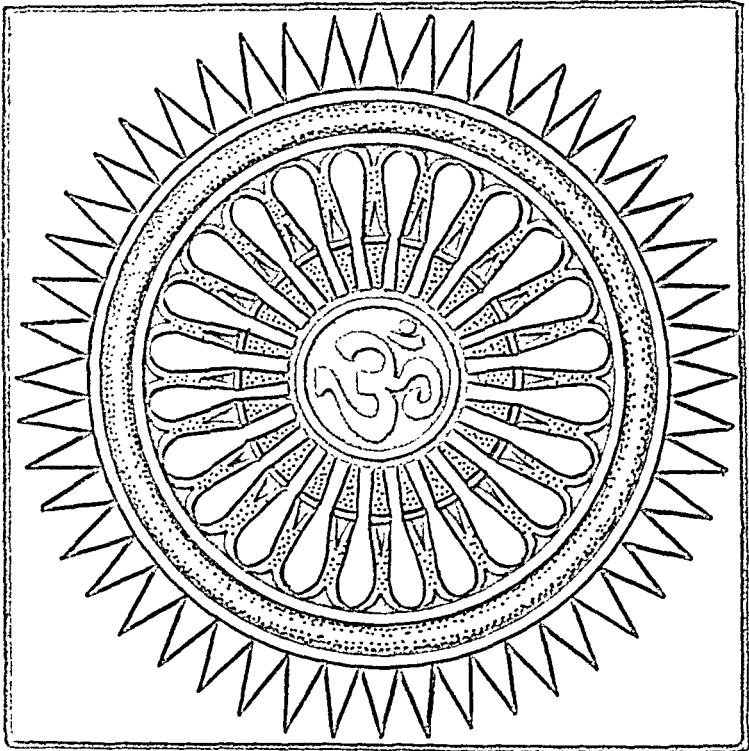
समवशरण के आगे आगे धर्म-चक्र जो चलता है ।
तीर्थंकर के अतिशय पुण्यों की यह परम सफलता है ॥
धर्म-चक्र से ही संचालित प्राणि मात्र का जीवन हो ।
ज्ञान चरित जीवन के आगे सम्यक् चक्र सुदर्शन हो ॥

जीवन्त स्वामी
महावीर

"ॐ"

षोडस अलंकारों से विभूषित युवराज वर्द्धमान

(१)

यद्यपि श्रीवर वर्द्धमान की है किशोर प्रस्तुत प्रतिमूर्ति ।
तो भी इसे न समझा जावे श्वेताम्बर भूषण की पूर्ति ॥

(२)

क्योंकि झलकती इसमें उनकी अनासक्त गृहस्थावस्था ।
इसको त्याग दिगम्बर मुद्रा धारेंगे सौम्यावस्था ॥

(३)

अलंकार थे इस प्रकार उन राजकुमार सलौने के ।
मणि माणिक्य जवाहर हीरे मोती चांदी सोने के ॥

(४)

शेखर कंकण चंचल कुंडल अंगद कर्णफूल केयूर ।
ग्रैवेयक आलंवक मुद्रा कटीसूत्र मंजीर प्रपूर ॥

(५)

कटक पदक श्रीगंध मध्यवंधुर सुन्दरतम आभूषण ।
पट्टहार युत अलंकार शुभ सोलह करते थे धारण ॥

(६)

अपने जीवन काल मध्य क्या ? पूजे जाते थे युवराज ।
हाँ उसकी साक्षी में प्रतिकृति तत्कालीन मिली है आज ॥

(७)

राज मुकुट आभूषण मंडित वर्द्धमान जयवन्त रहें ।
ध्यान मग्न त्रिशत वर्षायः युग कुमार जीवन्त रहें ॥

रत्नगर्भा वसुन्धरा से वीर बिम्ब का आविर्भाव
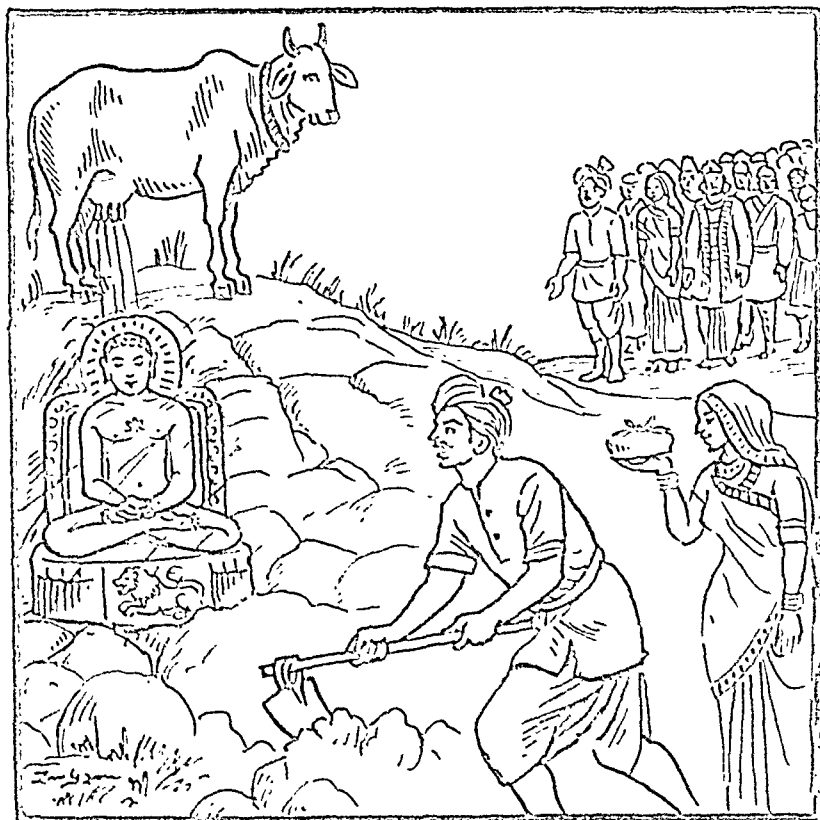
शुभ शकुनों की सत् निमित्त की ऐसी ही कुछ परंपरा है।
जब जब गर्भित मणि रत्नों को प्रकटाती यह वसुंधरा है॥
तब तब वत्सलता की धारा दूधों उन्हें नहाती है।
कामधेनु बन महावीर श्री की प्रतिभा प्रकटाती है॥

महावीरश्री अतीत की परतों में—

१. भिल्लराज पुरुरवा	१७. युवराज विश्वनंदी
२. सौधर्म स्वर्ग में देव	१८. महाशुक्र स्वर्ग में देव
३. भरतपुत्र मारीचिकुमार	१९. त्रिपृष्ठ नारायण
४. ब्रह्मस्वर्ग में देव	२०. सातवें नर्क में नारकी
५. जटिल ब्राह्मण ऋषि	२१. हिंसक सिंह
६. सौधर्मस्वर्ग में देव	२२. प्रथम नरक में नारकी
७. पुष्पमित्र ब्राह्मण ऋषि	२३. क्रूर हिंसक सिंह
८. सौधर्मस्वर्ग मे देव	२४. सौधर्मस्वर्ग में सिंहकेतु देव
९. अग्नि सह ब्राह्मण साधु	२५. कनकोज्ज्वल विद्याधर
१०. सनत्कुमारस्वर्ग में देव	२६. लान्तवस्वर्ग में देव
११. अग्निमित्र ब्राह्मण साधु	२७. हरिषेण राजा
१२. माहेन्द्रस्वर्ग में देव	२८. महाशुक्र स्वर्ग में देव
१३. भारद्वाज ब्राह्मण ऋषि	२९. प्रियमित्रकुमार चक्रवर्ती
१४. ब्रह्मस्वर्ग में देव	३०. सहस्रारस्वर्ग में देव
१५. स्थावर द्विज	३१. युवराज नन्दकुमार
१६. माहेन्द्रस्वर्ग में देव	३२. अच्युतस्वर्ग में देव

३३. तीर्थङ्कर महावीर-वर्द्धमान

नोट :—नं० १४ तथा १५ वें भवों के अन्तराल में मारीचि के जीव की पर्यायों का इतिहास इतना अधिक अन्धकार पूर्ण रहा है जो वर्णनातीत है। इस अन्धकार पूर्ण काल में मारीचि के जीव ने नरक निगोद, विकलत्रय त्रस स्थावर आदि चौरासी लाख योनियों में भव भ्रमण किया जिसका उल्लेख क्रमवद्ध रूप से जैन पुराणों में नहीं मिलता।

—सम्पादक

हीयमान से वर्द्धमान

प्रथम तीन पर्यायें क्रमशः महावीर की निम्न प्रकार ।
पुरूरवा, सौधर्म स्वर्गसुर, भरत-पुत्र मारीचि कुमार ॥१॥
फिर चौथी से लेकर छटवीं पर्यायों का है इतिहास ।
ब्रह्म स्वर्गसुर जटिल तपस्वी प्रथम स्वर्ग में पुनःनिवास ॥२॥
सप्तम से नवमें भव तक फिर उनने यों भव भ्रमण किया ।
पुष्पमित्र पुनि प्रथम स्वर्ग में अग्निमित्र अवतरण किया ॥३॥
दशवाँ ग्यारहवाँ बारहवाँ, भव क्रमशः इस भाँति भये ।
सनत्कुमार स्वर्गसुर होकर अग्निभूति माहेन्द्र गये ॥४॥
तेरहवाँ एवं चौदहवाँ भव उनके इस भाँति हुए ।
भारद्वाज विप्र मर करके ब्रह्म स्वर्ग में देव हुए ॥५॥
इसके बाद अनन्त काल तक नर्क निगोद प्रवास किया ।
स्थावर विकलत्रय त्रस में युगों युगों तक वास किया ॥६॥
फिर पन्द्रहवाँ भव स्थावर नामक ब्राह्मण रूप हुआ ।
सोलहवें भव स्वर्ग चतुर्थे जाकर देव अनूप हुआ ॥७॥
सत्रहवाँ भव विश्वनन्दि मुनि महाशुक्र अट्ठारहमाँ ।
था उनीसवाँ नारायण पद बीसम नारक महातमा ॥८॥
इक्कीस और बाईस तथा तेईस हुए भव यों क्रमशः ।
सिंह नारकी प्रथम नर्क का, सम्यक्त्वी सिंह हुआ पुनः ॥९॥
चौबीस और पच्चीस तथा छब्बीस भवों की पर्यायें ।
सौधर्म स्वर्ग सुर विद्याधर फिर स्वर्ग सातवें पहुंचाये ॥१०॥
सत्ताईस नृपति हरिषेणा महाशुक्र सुर अट्ठाईश ।
चक्रवर्ति उनतीस तीसवें सहस्रार के हुए अधीश ॥११॥
एकतीसवें भव में आये बनकर मुनिवर नन्दकुमार ।
बत्तीसम में लिया जिन्होंने अच्युत स्वर्ग में सुर अवतार ॥१२॥
अन्तिम भव में अच्युत स्वर्ग से चयकर सुत सिद्धार्थ हुए ।
हीयमान से वर्द्धमान यों सिद्ध प्रसिद्ध कृतार्थ हुए ॥१३॥

महावीर पर्याय कल्पद्रुम

पत्ते पत्ते रहा डोलता वैभाविक पर्यायों पर।
जैसी दृष्टि सृष्टि वैसी ही महावीर संदेश अमर॥
निम्न अवस्थाओं से लेकर ऊँचे से ऊँचे विकास की।
क्रमशः झांकी यहाँ देखिये महावीर के मोक्ष वास की॥

पुरुरवा द्वारा दि० मुनि पर शर-सन्धान
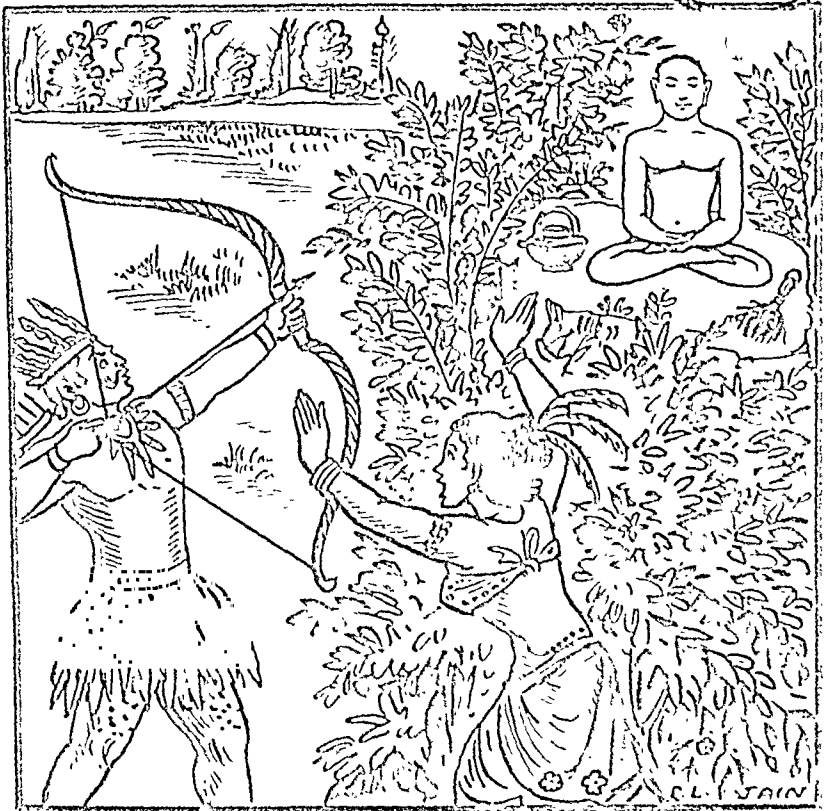
पुरुरवा ने हरिण समझ उन, मुनि पर शर-संधान किया।
किन्तु कालिका ने निज पति के, दृष्टि दोष को जान लिया॥
बोली नाथ ! रुको मत मारो, ये वन-देव दिगम्बर हैं।
आत्मलीन ये पर उपकारी महाव्रती जिन गुरुवर हैं॥

भिल्लराज पुरुरवा का उद्धार

सुनकर यह कल्याणी वाणी, भीलराज को जागा ज्ञान ।
तत्क्षण पाद मूल में पहुचा, फेंक वही पर तीर-कमान ॥
मुनिश्री ने तब भव्य जान कर, उसको दिया धर्म उपदेश ।
मद्य मांस मधु सप्त व्यसन से, वर्जित श्रावक व्रतानःशेष ॥

सौधर्म स्वर्ग में पुरुरवा के जीव द्वारा–
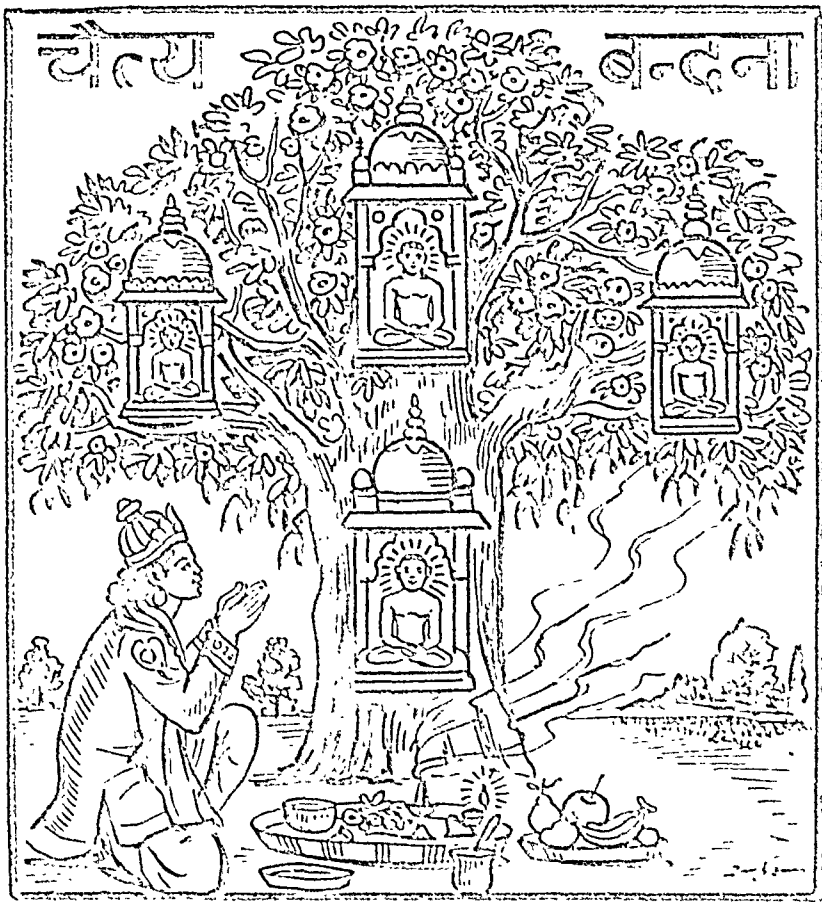
धारण कर सम्यक्त्व सहित वह जप तप संयम अणुव्रत शील ।
प्रथम स्वर्ग में देव महर्द्धिक हुआ समाधि मरण से भील ॥
अतः सपरिकर चैत्य वृक्ष पर स्थित अरिहतों को नित्य ।
भक्ति भाव से पूजा करता था ले अष्ट द्रव्य साहित्य ॥

भरत चक्रवर्ति पुत्र मारीचि कुमार

आयु पूर्ण कर देव-धरा पर, ऋषभदेव का पौत्र हुआ ।
भरत चक्रवर्ती के घर मे, यह मारीचि सुपुत्र हुआ ॥
इसी अयोध्या मे चक्री की, प्रिया "धारिणी" के उर से ।
सुत मारीचि हुआ मेधावी, चय कर सौधर्मी सुर से ॥

पद भ्रष्ट मारीचि इन्द्र द्वारा प्रताड़ित

जो दिव्यध्वनि अनुसार कभी तीर्थंकर होने वाले हैं।
वह द्रव्यलिङ्ग मुनि वन भव के वीजों को बोने वाले हैं॥
तव वन में स्थित देवराज पथ भ्रष्टों को समझाते हैं।
यह वेष दिगम्बर पावन है इसको यों नहीं लजाते हैं॥

मारीचि द्वारा मिथ्या मत का प्रचार

तब होनहार अनुसार बना वह मिथ्यामत का नेता था।
वह परिव्राजक का वेष धार उपदेश विपर्यय देता था॥
हाँ, मैं भी श्री जिन आदिनाथ सा जगत्‌गुरु कहलाऊँगा।
उन जैसा ही मैं भी अपना अब पंथ अलग अपनाऊँगा॥

हठयोगी मारीचि ब्रह्म स्वर्ग में

परिव्राजक निज तप प्रभाव से आयु पूर्ण कर स्वर्ग गया।
ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर तक सब सुख भोगे पूर्णतया॥
मिथ्या तप के भी प्रताप से मिल जाते जब सुख स्वर्गीय।
तो फिर सत्य तपस्या द्वारा क्यों न मिले फल अद्वितीय?॥

सांख्य मत प्रचारक जटिल ऋषि
(मारीचि का जीव)
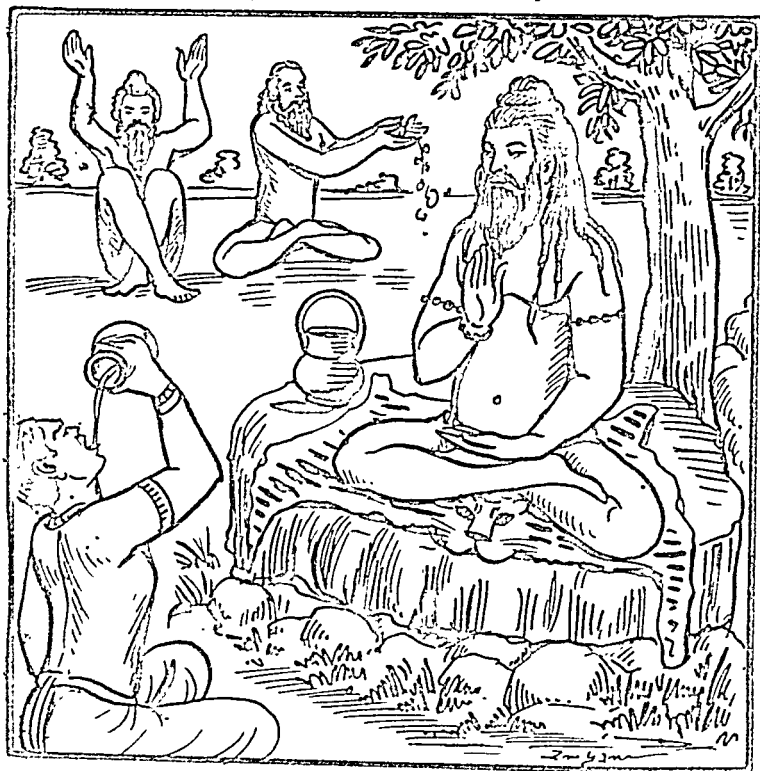
ब्रह्मस्वर्ग से चय कर वह मारीचि जीव अवनी पर।
जटिल नाम का पुत्र हुआ द्विज कपिल और काली वर ॥
ऋषि बन कर मिथ्यात्व धर्म का उसने अति उपदेश दिया ॥
भाँति-भाँति की करी तपस्या एवं काय-क्लेश किया ॥

कुतप द्वारा सौधर्म स्वर्ग में जटिल ऋषि का जीव

आयु पूर्ण कर उस तापस ने प्रथम स्वर्ग में जन्म लिया।
स्वर्गिक वैभव जिन वंदन में ही निज काल व्यतीत किया॥
भोगों को वह भोग रहा था पर सचमुच वह भुक्त बना।
इसीलिये तो दो सागर तक वह माया से युक्त बना॥

जटिल ऋषि का जीव
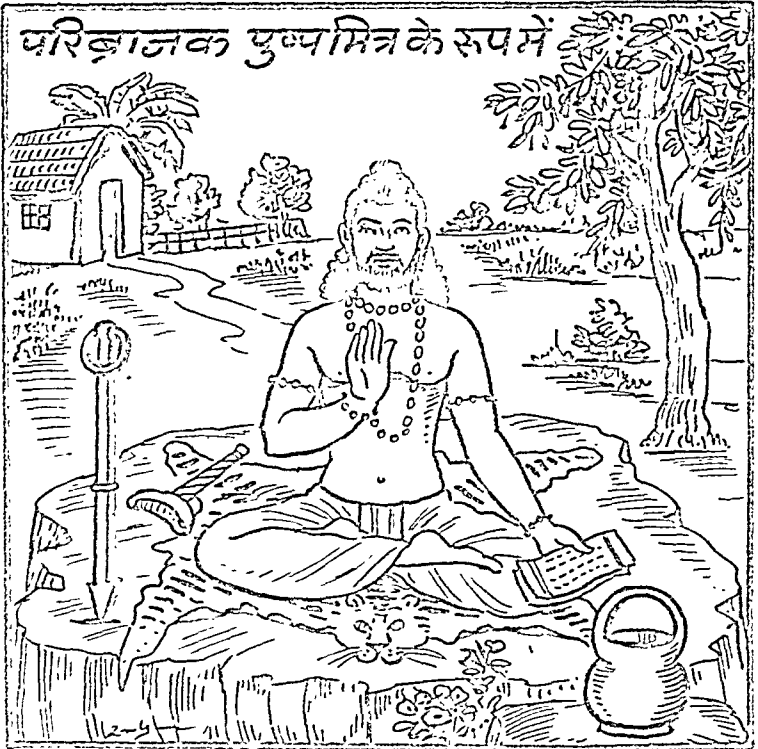
भारद्वाज-पुष्पदत्ता ये भारतीय द्विज दम्पति थे ।
इनके सुत मारीचि जीव अब पुष्पमित्र नामक यति थे ॥
वे स्वर्गों का वैभव तज कर नगर अयोध्या आये थे ।
सांख्य धर्म के उपदेशों से जन-जन को भरमाये थे ॥

आयु पूर्ण कर पुन--हुये, सौधर्म स्वर्ग अधिकारी।
क्योंकि तपस्या के प्रभाव से, मिले सम्पदा भारी॥
आयु एक सागर की पाकर, भोगों में तल्लीन हुये।
पुनः उतरना पड़ा वहाँ से, क्योंकि पुण्य फिर क्षीण हुये॥

पुष्प मित्र का जीव

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी में, अग्निभूति ब्राह्मण थे ।
प्रिया गौतमी के संग सुख से, करते जो कि रमण थे ॥
वह मारीचि इन्हीं के घर में, अग्निसह्य अवतरित हुआ ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का, मिथ्यामत स्फुरित हुआ ॥

खोटे तप के प्रभाव से

सनत्कुमार स्वर्ग में पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस ।
सात सागरों तक सुख भोगा, चख पुण्यों का मधुरस ।।
इन्द्रिय जन्य सभी सुख नश्वर, पराधीन बन्धक हैं ।
बाधा युक्त विषम फल दाता, दुख के उत्पादक हैं ।।
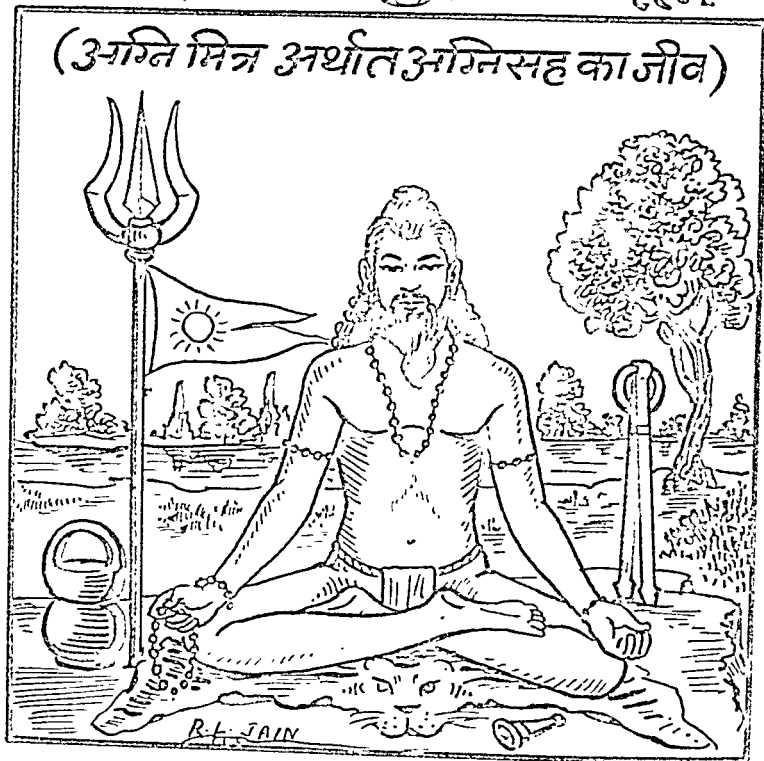
त्रिदंडी साधु अग्निभूत

सनत्कुमार स्वर्ग से चय कर मन्दिर नाम नगर में ।
अग्निभूति यति हुआ त्रिदंडी गौतम द्विज के घर में ।।
मिथ्या शास्त्रों का प्रवचन कर ऐकान्तिक फैलाया ।
बन पत्थर की नाव स्वयं ही डूबे और डुबाया ।।

माहेन्द्र स्वर्ग में
(त्रिदंडी साधु अग्निभूत का जीव)

देह त्याग कर साधु त्रिदंडी स्वर्ग पाचवें पहुँचा।
कर्म चेतना का फल भोगा शुभ ऊँचे से ऊँचा॥
निज ज्ञायक को लक्ष्य बनाने वाली ज्ञान चेतना है।
उसमें विभव विभाव नहीं है वह स्वभाव ही अपना है॥

महामिथ्यात्वी बाल तपस्वी भारद्वाज

मातु मंदिरा ब्राह्मणी थी जनक सांकलायन थे ।
भारद्वाज नाम के उनके सुत वहुश्रुत ब्राह्मण थे ॥
जो कि स्वर्ग से चय कर आये पूर्व संस्कारों वश ।
ऐकान्तिक मिथ्यात्व प्रचारक वने त्रिदंडी तापस ॥

ब्रह्म स्वर्ग में भारद्वाज ब्राह्मण
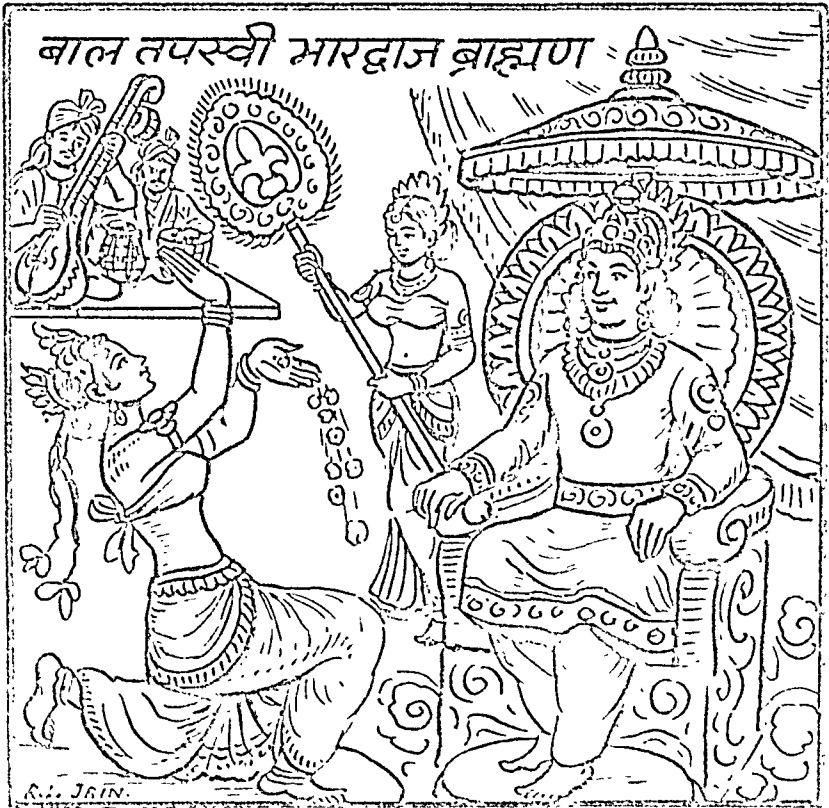
फल स्वरूप देवायु बाँध कर, स्वर्ग पांचवें पहुँचे ।
मंद कषायी बाल-तपस्वी, सुरगति में ही पहुँचे ।।
पुण्याश्रव को पुण्य बंध को, जब तक संवर माना ।
तब तक मिथ्यात्वी जीवों ने, धर्म नहीं पहिचाना ।।

मनुष्य-देव पर्यायों के पश्चात (मारीच जीव निगोद में)
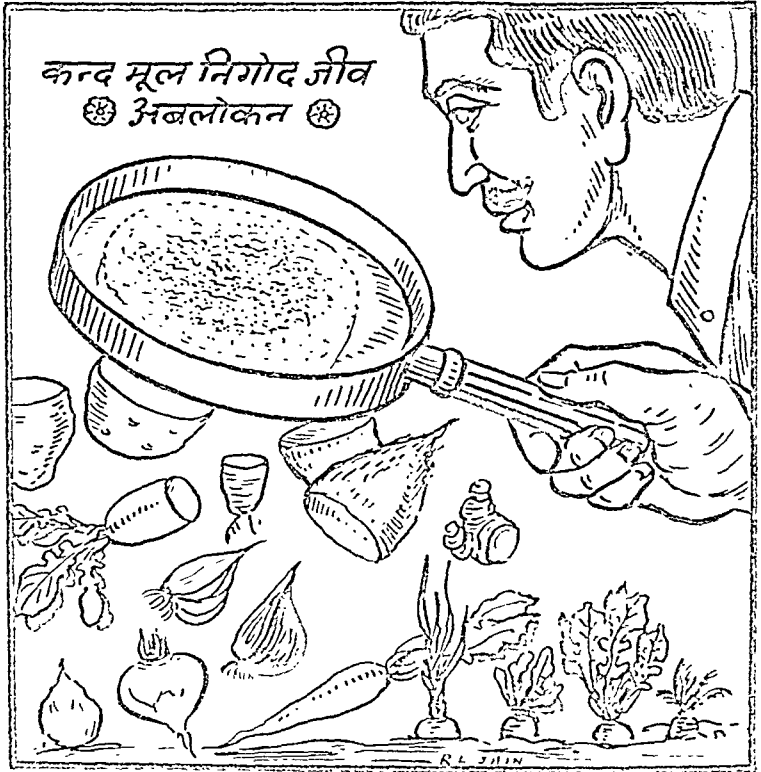
आलू शकरकंद लहसुन में, फिर उपजे फिर और मरे।
एक देह में ही अनंत, अक्षर अनतवाँ ज्ञान धरे।
सिद्धों का सुख एक ओर था, उससे उतना ही विपरीत।
दुख निगोद में नरकों से भी, अधिक सहा था वचनातीत॥

नरकों की असह्य वेदना
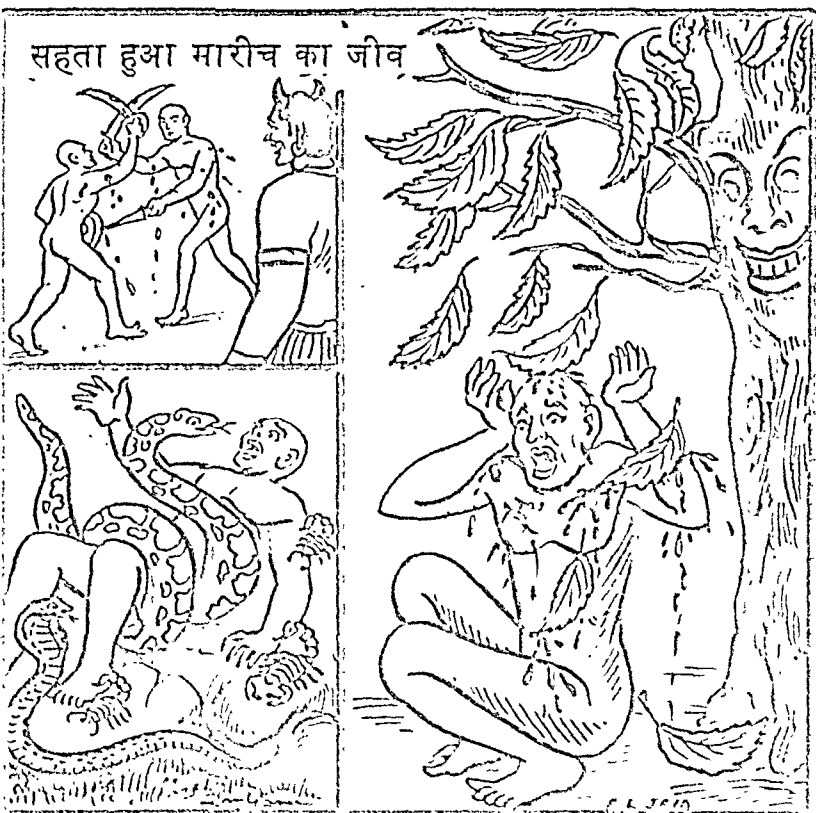
आर्त-रौद्र मोहित परिणामों के फल नरकों में भोगे ।
खून पीप की वैतरिणी में पहिन वैक्रियक चोगे ॥
एक साथ विच्छू सहस्र मिल, मानो डंक मारते हों ।
सेमर तरु के पत्ते-पत्ते भी तलवार धारते हों ॥

मारीचि जीव का पुनः नारकीय जीवन

आपस में लड़ टुकड़े-टुकड़े; किये देह के पारावत् ।
ले समुद्र की प्यास बूँद को, भी तरसा वह मिथ्यामत ॥
रवि भी जल कर पिघल जायगा, इतना है क्वकनांक वहां का ।
शशि भी गल कर वह जायेगा, इतना तीव्र हिमाक वहां का ॥

पंच स्थावरों में भटकता मारीचि का जीव

उम्र तीन दिन-रात रही कई बार अग्नि कायिक होकर।
वायु काय का जीव हुआ यह, तीन हजार वर्ष सोकर॥
दस हजार वर्षों तक थी, प्रत्येक वनस्पति की उच्चायु।
ईंधन-राधन-काटन-छेदन-भेदन, दुःख सहे पै निरुपायु॥

लज्जा जनक हीन पर्यायों का इतिहास
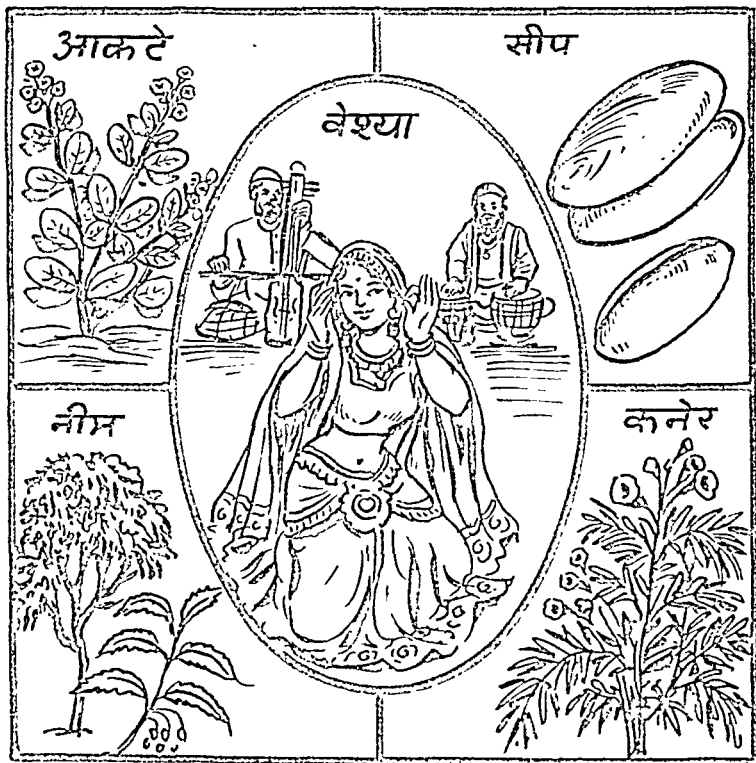
डेढ़ हजार अकौआ की थीं, सीप योनि अस्सीय हजार ।
नीम और केला तरु की थीं, सहस वीस नव क्रम अनुसार ।।
तीस शतक चंदन तरु एवं, पंच कोटि भव हुये कनेर ।
वेश्या साठ हजार वार बन, पांच कोटि तन धरे अहेर ।।

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक जीवों के दुखों का वर्णन

(१)

लट-चींटी-भँवरा विकलत्रय द्वय त्रय चतुरिन्द्रिय के जीव ।
चिंतामणि सम दुर्लभ है त्रस जिसमें रह दुख सहे अतीव ।।

(२)

कुचले-पीसे गये प्रवाहित हुये अग्नि में भस्मीभूत ।
खाये गये पक्षियों द्वारा सहे दुःख मारीचि प्रभूत ।।

(३)

पंचेन्द्रिय जब हुआ असैनी हित अनहित का नहीं विवेक ।
ज्ञान अल्प था, मोह तीव्र था धर्महीन दुख सहे अनेक ।।

(४)

संज्ञी पंचेंद्रिय पशु होकर लघु जीवों का किया शिकार ।
स्वयं दीन कातर होने पर बना सशक्तों का आहार ।।

(५)

छेदन-भेदन-क्षुधा-पिपासा की पीड़ायें क्या कहना ? ।
सर्दी-गर्मी बोझा ढ़ोना-वध-बन्धन परवश सहना ।।

(६)

पुण्य योग से नर भव पाया, किन्तु न पाई मानवता ।
इसीलिये दुख सहे अनेकों गर्भ-जन्म एवं शिशुता ।।

(७)

पृथ्वी जल की अग्नि वायु की वनस्पती की बादर काय ।
अपर्याप्त पर्याप्त रूप से धारी असंख्यात पर्याय ।।

(८)

पृथ्वी कायिक में भोगी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार ।
जल कायिक में भोगी थी उत्कृष्ट आयु पुनि सात हजार ।।

विकलत्रय त्रस एवं मानव पर्याय में मारीचि
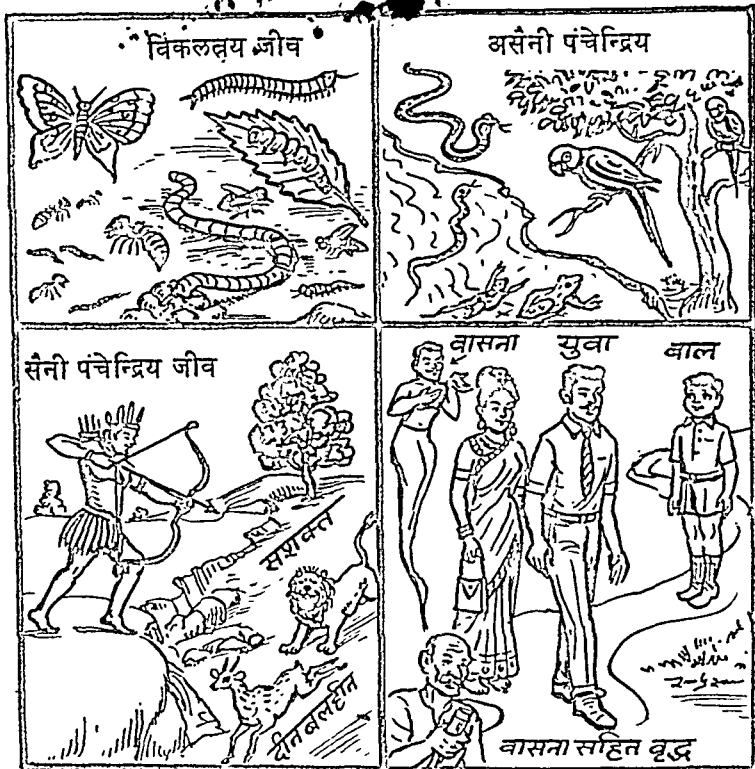
वालकपन में खेल-कूद में सारा समय व्यतीत हुआ।
भोग विलासों भरी जवानी में कुछ भी न प्रतीत हुआ॥
वूढ़ी सव हो गईं इन्द्रियाँ किन्तु वासना रही जवान।
मरघट में पग लटक गये पर आया नहीं धरम का ध्यान॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में मारीचि
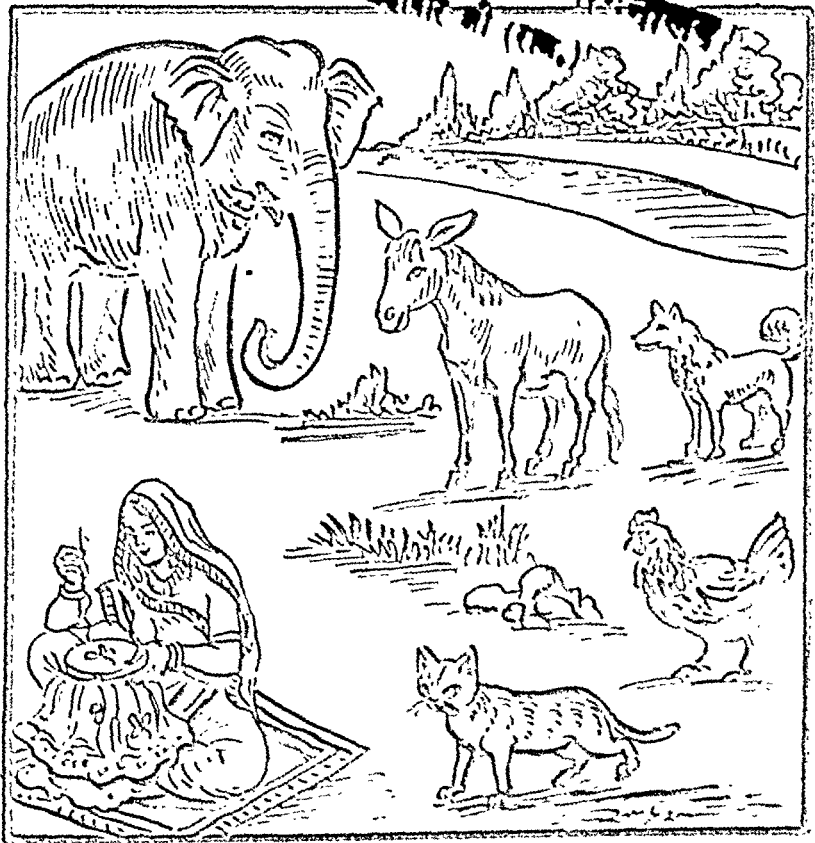
बीस कोटि अवतार गजों के गर्दभ पशु के साठ करोड़ ।
स्वांग स्वान के तीस कोटि थे साठ लाख कलीदों के जोड़ ।।
बीस कोटि नारीपर्यायें, रजक वृत्ति की नव्वे लक्ष ।
मार्जार एवं तुरगी के बीस आठ कोटिक कम लक्ष ।।

शांडली पुत्र स्थावर द्विज के रूप में
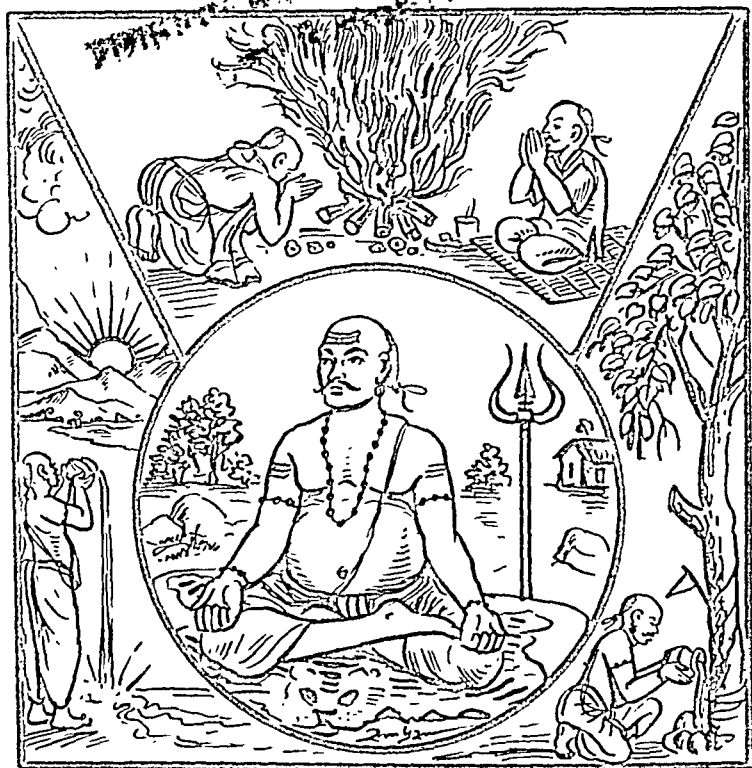
जंन्म मरण के साठ लाख तक कष्ट असंख्यां काल सहे ।
शुभ कर्मों से शांडली (क) के स्थावर द्विज बाल रहे ।।
इह भवघाती आतम हनन ही सब से दुखकर पाप यहां है ।
जन्म जन्म घाती मिथ्यात्वी ! बना पाप का बाप यहां है ।।

स्थावर द्विज माहेन्द्र स्वर्ग में

आयु पूर्ण कर स्वर्ग चतुर्थ पाई विप्र ने सुर पर्याय ।
क्योंकि स्वर्ग सुख दे सकती है बिन समकित ही मंद कषाय ।।
लाखों शून्य इकट्ठे होकर नहीं बने हैं कभी इकाई ।
लाखों पुण्यों ने मिलकर क्या कभी धर्म की संज्ञा पाई ? ।।

विश्वनन्दी द्वारा वैसाखनन्द पर वृक्ष प्रहार

स्वर्ग सुखों से च्युत होकर सुर, हुआ विश्वनंदी युवराज।
उसका शत्रु चचेरा भाई, था वैशाखनंद शिरताज॥
उद्धत हो वैशाखनंद ने, उपवन पर अधिकार किया।
वृक्ष उखाड़ विश्वनंदी ने, उस पर अतः प्रहार किया॥

विश्वनंदी द्वारा वैशाखनंद पर वृक्ष-स्तम्भ प्रहार

बच कर भागा चढ़ा खंभ पर, वह वैसाखनंद भयभीत।
तोड़ा उसे विश्वनंदी ने, हुई साथ ही आत्म प्रतीति॥
मानव से मानव डरता है, इतना कायर है संसार।
अगर वीर मुझ को बनना है, लूं विरागता के हथियार॥

विश्वनन्दी द्वारा दिगम्बरत्व ग्रहण
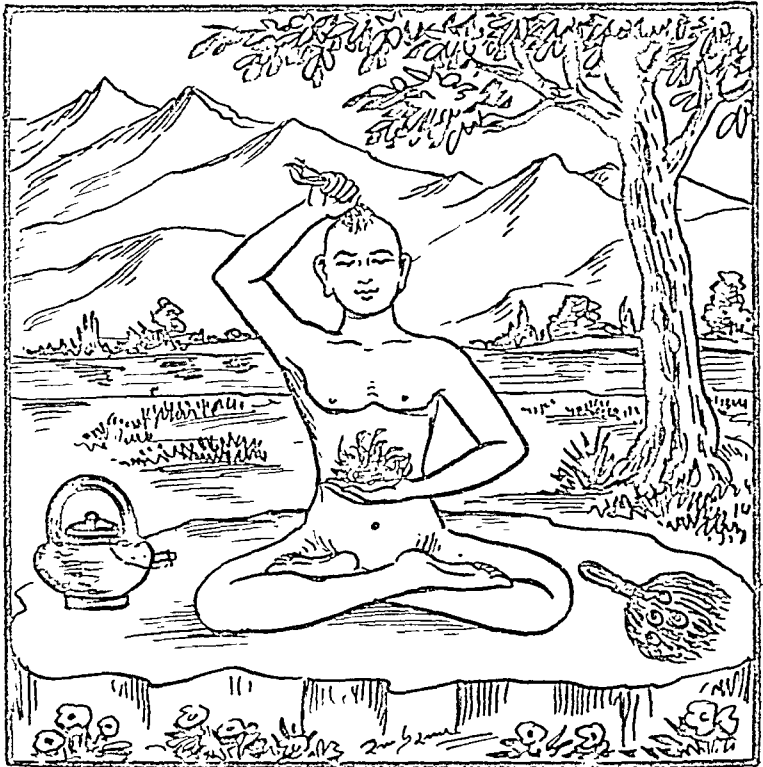
विश्वनंदि वैशाखभूति ने, नग्न दिगम्बर धारे भेष ।
कठिन तपस्याओं के कारण, काया जर्जर हुई विशेष ॥
पंच महाव्रत पंच समिति त्रय, गुप्ति धर्म दश धारी वे ।
शुभ उपयोग सहित छटवें गुण, थानक शुद्ध बिहारी वे ॥

मुनि विश्वनंदी का आहारार्थ गमन
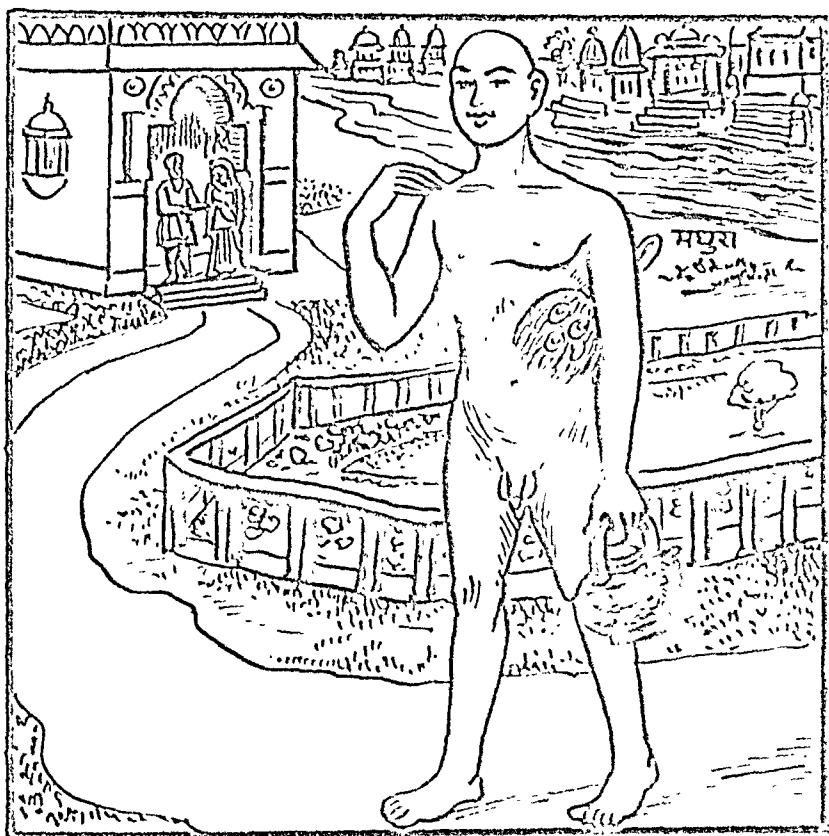
पाणिपात्र खड्गासन मुद्रा में ही नीरस अल्पाहार ।
सिंहवृत्ति से निरंतराय मुनि जीवनार्थ करते स्वीकार ।।
एक दिवस श्री विश्वनंदि जी आहारार्थ निकलते हैं ।
मथुरा नगरी ओर मुनीश्वर ईर्यापथ से चलते हैं ।।

वलिष्ठ बैल द्वारा विश्वनंदी मुनि पर आक्रमण
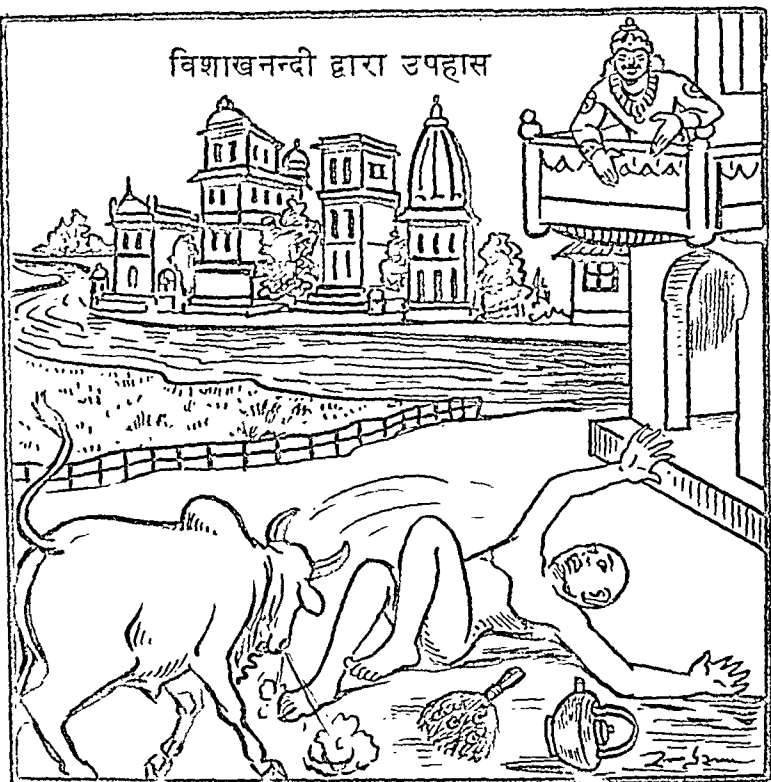
तभी भागते हुए वैल की टक्कर से वे गिर जाते ।
किन्तु तनिक भी अपने मन में नहीं कषायों को लाते ।।
राजमहल की छत पर से वैशाखनंद ने देखा दृश्य ।
अट्टहास उपहास सहित वह बोला व्यंगोक्तियां अवश्य ।।

विश्वनन्दी मुनि का महा शुक्र स्वर्ग में प्रयाण

दृष्टि: के अनुसार सृष्टि है भावों के अनुसार भवन ।
विश्वनंदि वैशाखभूति ने दशम स्वर्ग में किया गमन ।।
मुनि निंदक वैशाखनंद भी सप्तम नर्क पहुँचता है ।
आगे की पर्यायों में खल नायक इनका बनता है ।।

नारायण प्रति नारायण का द्वंद्व युद्ध

वेचारे उस ज्वलनजटी पर अश्वग्रीव चढ़ कर आया।
मानो सन्मुख देख शेर को मृग वेचारा घवराया॥
किन्तु न्याय के साक्ष्य हेतु आये नारायण वलभद्र।
की सहायता ज्वलनजटी की अश्वग्रीव से छीना चक्र॥

त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा अश्वग्रीव प्रति नारायण का वध

थे त्रिपृष्ठ नारायण एवं अश्वग्रीव प्रतिनारायण ।
नियत व्यवस्था नहीं बदलती दोनों में होता है रण ॥
किन्तु नियमत: मारा जाता है नारायण के द्वारा ।
खल नायक प्रति नारायण था अश्वग्रीव रिपु बेचारा ॥

त्रिपृष्ठ नारायण द्वारा गायक शय्यापाल पर आक्रोश

गायक शय्यापाल किन्तु था गाने में इतना तल्लीन ।
राजा के निद्रित होने की खबर न उसको हुई स्वाधीन ।।
स्वर लहरी से निद्रा टूटी नहीं क्रोध का पारावार ।
गायक के मुख-कर्ण डाल दी गर्म गर्म शीशे की धार ।।

पापोदय से त्रिपृष्ठ नारायण सातवें नर्क में उत्पन्न

नारायण का नरकों जाना, सर्वज्ञों ने देखा है।
उसको कौन बदल सकता जो, अमिट नियति की रेखा है॥
बह्वारंभ परिग्रह से या, विषय-भोग परिणाम स्वरूप।
आर्त-रौद्रध्यानों से मर कर, गया सातवें नर्क कु—रूप॥

त्रिपृष्ठ नारायण नर्क से निकल कर सिंह पर्याय में

कई सागर पर्यन्त नर्क के, दुःख सहे उसने घनघोर।
निकल वहाँ से हुआ शेर वह, हिंसक पशु गंगा की ओर ॥
किन्तु अभी भी उस तिर्यच को सूझा नहीं कोई सदुपाय।
अथवा ऐसा कहो कि युगपत्, मिले नहीं पाचों समवाय ॥

चारण ऋद्धिधारी मुनियों द्वारा सिंह को उद्बोधन

एक दिवस वह क्रूर सिंह मृग पर चढ़ने ही वाला था।
दो चारण ऋद्धिधारियों ने त्यों ही जादू कर डाला था।
जय अजितञ्जय जय अमिततेज मुनि करुणा के अवतार महा
सिंह से वोले—ठहरो! ठहरो!! तुमको वध का अधिकार कहाँ?।

पर्याय मूढ़ता के द्वारा तुम तो अनादि से भटक रहे।
तुम आत्म-विपर्यय होकर ही चहुँ गति में औंधे लटक रहे ॥

(२)

अब अपनी सम्यक् दृष्टि करो, अपने स्वरूप को पहिचानो।
त्रैलोक्य धनी तुम 'महावीर' यह दिव्य-दृष्टि द्वारा जानो ॥

(३)

मिथ्यात्व सरीखा पाप नहीं सम्यक्त्व सरीखा धर्म नहीं।
शोभा तुम को दे सकता है इस हिंसा का अब कर्म नहीं ॥

(४)

श्री ऋषभदेव के युग से ले भव भव मिथ्यात्व रचा तुमने।
पाखण्डवाद को फैलाकर बस आत्म वंचना की तुमने ॥

(५)

पिछली पर्यायें मत देखो मत देखो अगली पर्यायें।
उनका इतिहास देखने से पैदा होती आकुलतायें ॥

(६)

यद्यपि सिंह की पर्याय तुम्हें जो वर्तमान में प्राप्त हुई।
वह तीव्र कषायी भावों की रचना तन मन में व्याप्त हुई ॥

(७)

अब वर्तमान में सावधान होकर स्वरूप को पहिचानो।
तिर्यञ्च क्रूर तुम सिंह नहीं यह दिव्य-दृष्टि द्वारा जानो ॥

(८)

संशय विभ्रम को छोड़ बनो हे चेतन तन से निर्मोही।
निःशंकित होकर पालो तुम सर्वज्ञ निरूपित दोनों ही ॥

(९)

निश्चय व्यवहार समन्वित हो निज ग्रहण पूर्वक त्याग कहा।
अपने से बाहिर जाना ही शुभ अशुभ रूप मय राग कहा॥

(१०)

यह भेद ज्ञान की कला तुम्हें सम्यक् पथ पर लाने वाली।
इसका अभ्यास करो प्रतिक्षण जो कर्मों को ढाने वाली॥

(११)

तुम मांसाहार तजो पहिले फिर अणुव्रत पालन कर लेना।
लेकर समाधि फिर अंत समय जिन भक्ति हृदय में धर लेना॥

(१२)

संसार शरीरों भोगों में नश्वरता है अशरणता है।
एकत्व त्रिकाली शुद्ध ध्रौव्य अपवित्रा अन्य वरणता है॥

(१३)

पाप पुण्य के आश्रव तो चेतन का बंधन करते हैं।
इसलिये हेय इनको मानो कर्मों का सर्जन करते हैं॥

(१४)

है धर्म सुसंवर स्वयं पुरुपार्थ निर्जरा का करता।
फिरलोक भ्रमणका कर विचार निज बोधि भाव मन में धरता॥

(१५)

दश धर्म रूप रत्नत्रय ही यह जैन धर्म कहलाता है।
जो परम अहिंसा धर्म नाम से जग में जाना जाता है॥

(१६)

मुनि वचनों पर श्रद्धा करके, आत्मा का ज्ञान विवेक जगा।
सम्यक् दृष्टी के दर्शन से लो युग-युग का मिथ्यात्व भगा॥

(१७)

अब उदासीन श्रावक सा रह वह अपना समय बिताता था।
अपने भव-भव के कृत कर्मों पर, बार बार पछताता था॥
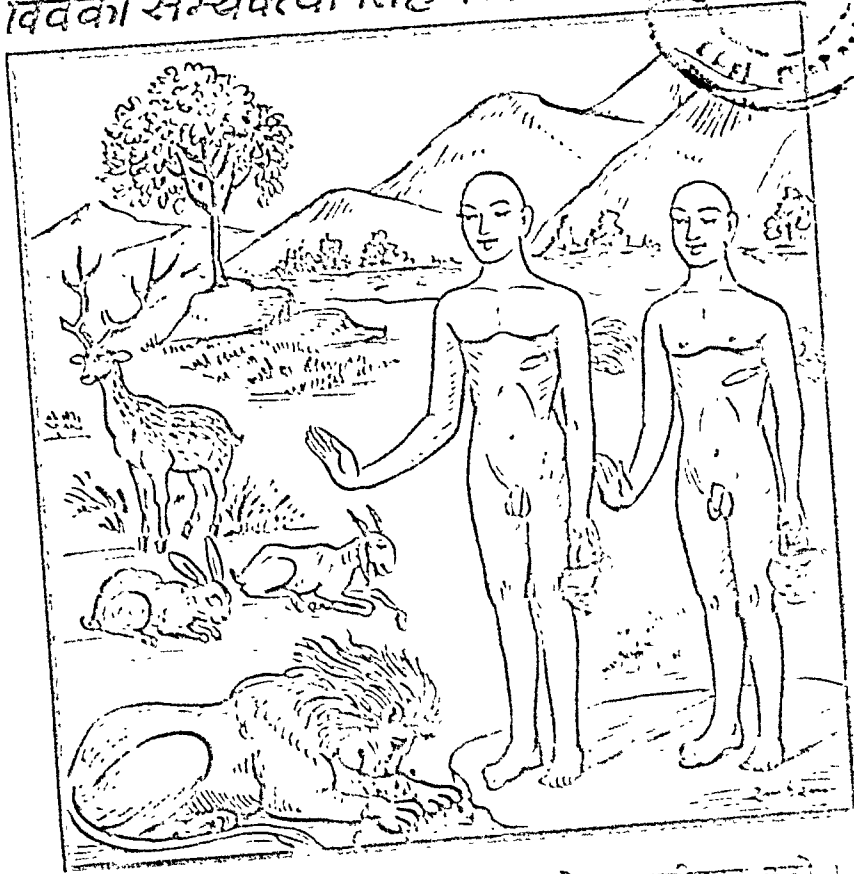
विवेकी सम्यक्त्वी सिंह पश्चाताप मौन मुद्रा में

अब सम्यग् दर्शन धारण कर श्रावक के व्रत स्वीकार करो।
हे मृगपति! पशु निर्दोषों का, मत आगे अब संहार करो॥
मुनिश्री का उपदेशामृत सुन आँखों से आँसू टपक पड़े।
प्रायश्चित पापों का करके, मृगपति चरणों में झुक पड़े॥

सौधर्म स्वर्ग का देव "सिंह केतु"

(सिंह का जीव)
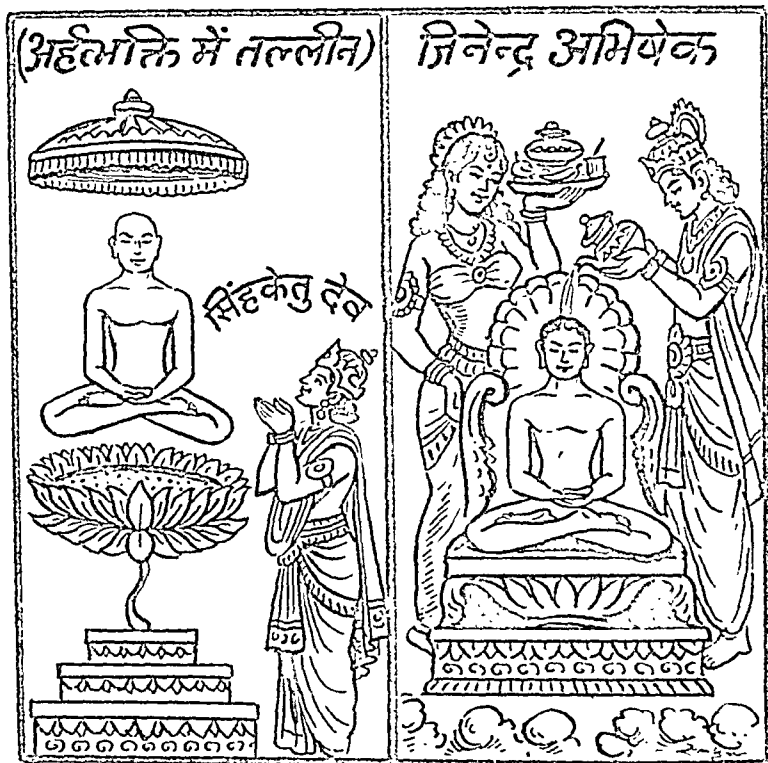
सम्यक्त्व सहित जब मरण किया सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ।
थी सिंहकेतु संज्ञा उसकी अरिहंत भक्त स्वयमेव हुआ।।
अभिषेक जिनेश्वर का करता वह सम्यक् दृष्टी भव्य महा।
सुख साधन धर्माराधन ही था उसका निज कर्त्तव्य वहाँ।।

सिंहकेतु देव द्वारा पचंमेरु की वन्दना
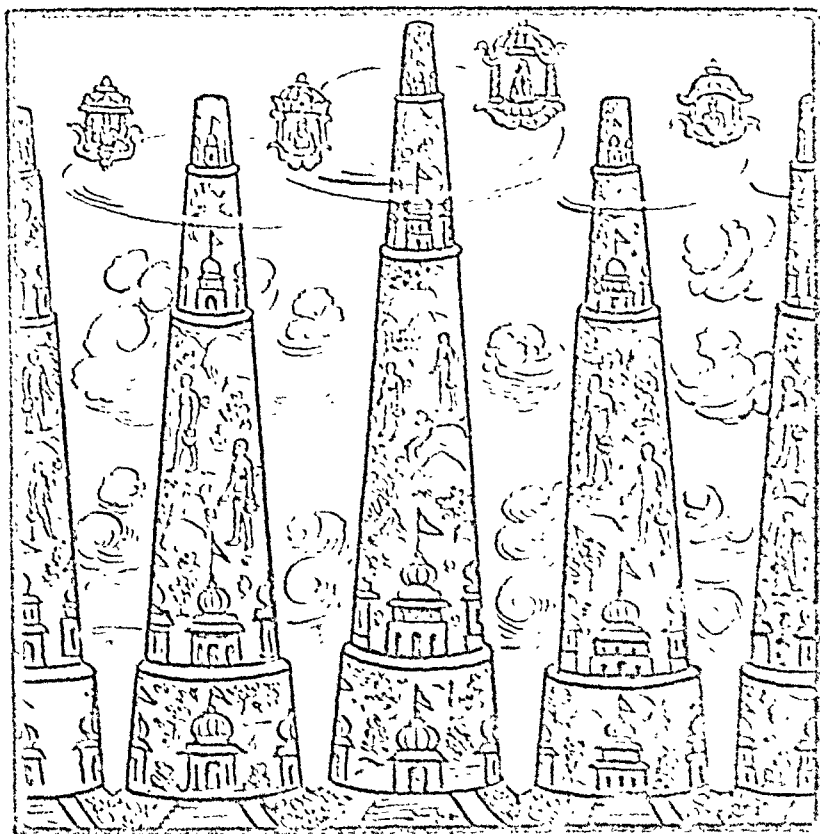
वह पंचमेरु के चैत्यों की वन्दन करता था यदा-कदा ।
शुभ राग और सुख वैभव में ही रहता था तल्लीन सदा ।।
निश्चय ही धर्म जहाँ रहता शुभ भाव पुण्य सहचारी है ।
सहचारीपन के ही कारण शुभ पुण्य धर्म अधिकारी है ।।

सिंहकेतु देव का जीव कनकोज्ज्वल विद्याधर
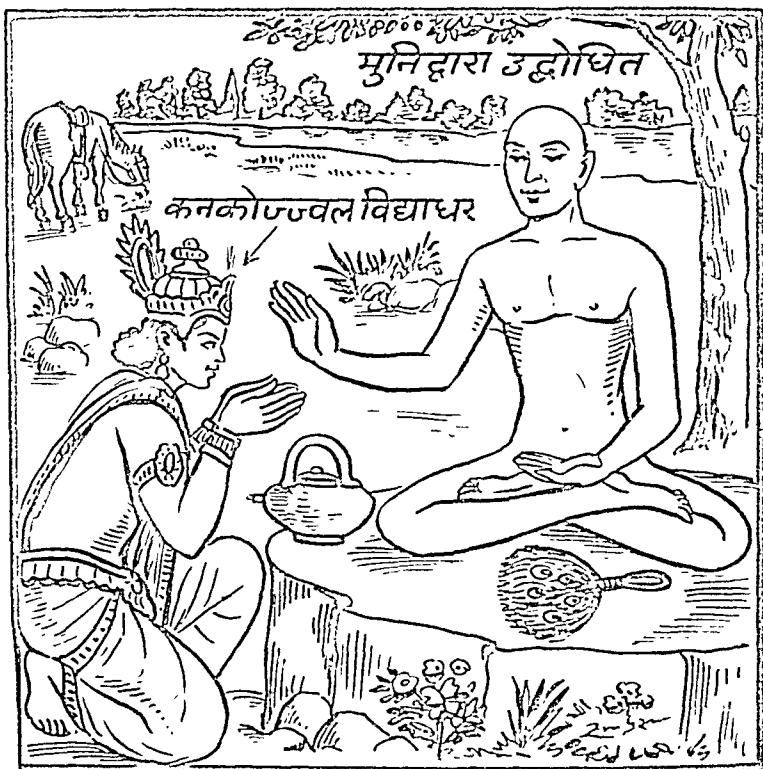
सौधर्म स्वर्ग से चय कर फिर कनकोज्वल राजकुमार हुआ ।
८४। कनकप्रभ नृपति पंख विद्याधर घर अवतार हुआ ॥
जल से भिन्न कमल वत् रहकर विद्याधर ने भोगे भोग ।
एक दिवस गुरु के वचनों का प्राप्त हुआ था शुभ संयोग ॥

कनकोज्ज्वल युवराज वैराग्य की ओर
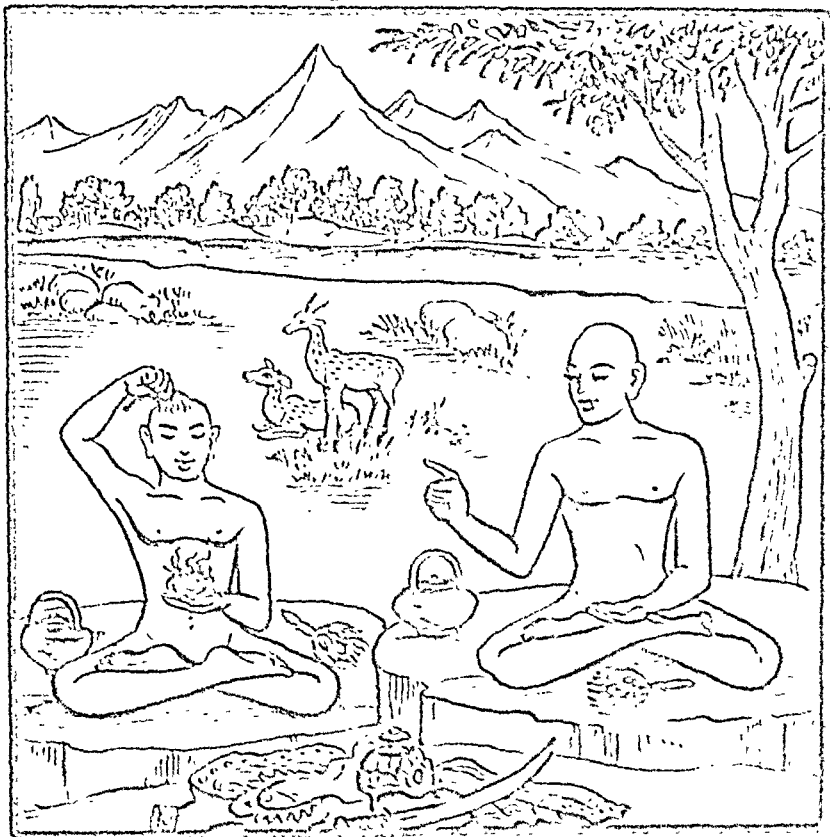
संसार देह एवं भोगों से वह युवराज विरक्त हुआ ।
महाव्रती निर्ग्रन्थ दिगम्बर रत्नत्रय का धारी हुआ ।।
कनकोज्ज्वल मुनिवर भावलिंग शुद्धोपयोग में रहते थे ।
अस्थिरता होने पर किंचित शुभ उपयोगों में बहते थे ।।

लान्तव स्वर्ग की विभूति से विभूषित कनकोज्ज्वल का जीव
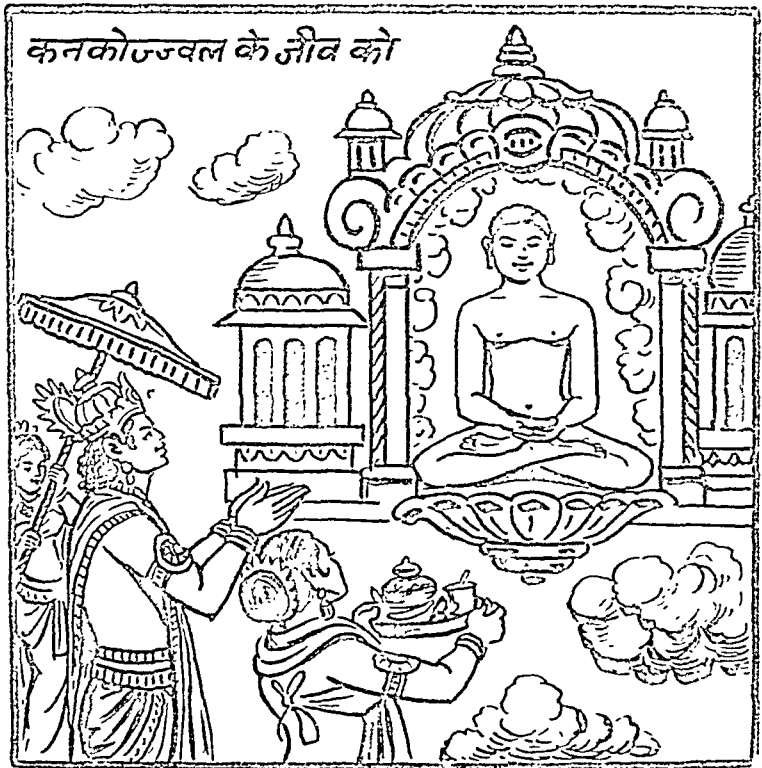
सम्यक्त्व सहित जब मरण किया तब उसको सप्तम स्वर्ग मिला ।
।।न। विराग के सागर में सुख ऐश्वर्यों का कमल खिला ।।
वह अविरत सम्यक्दृष्टी था पर संयम की थी छटापटी ।
इसलिये न क्षण भर भी उसकी ज्ञायक स्वभाव से दृष्टि हटी ।।
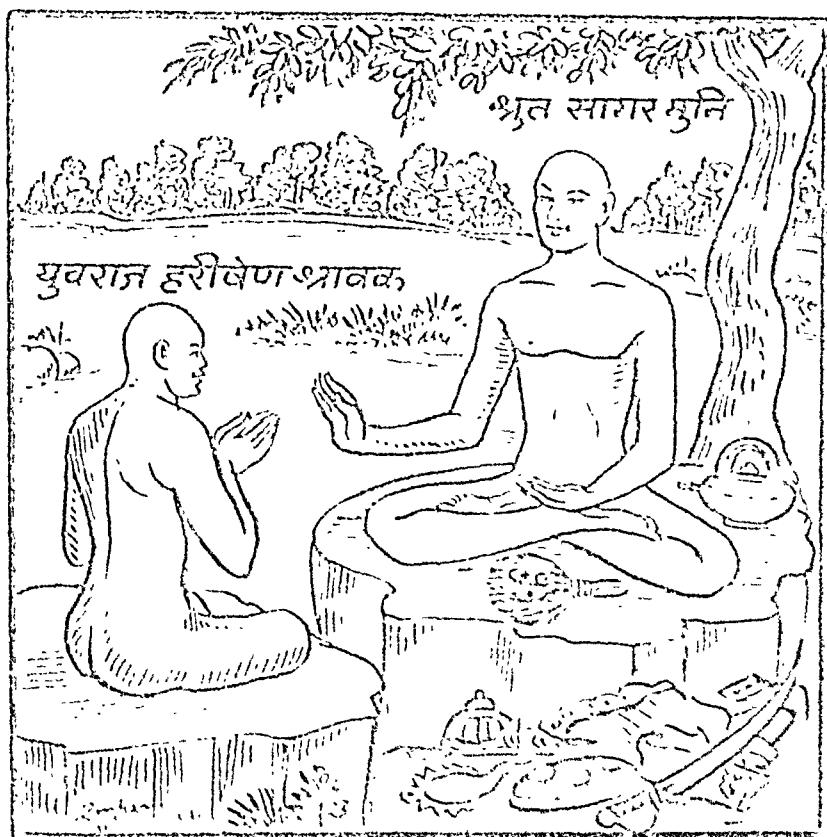
हरिषेण मुनि श्री का जीव महा शुक्र स्वर्ग में

धर्म और पुण्यों के फल से प्राप्त हुआ तब स्वर्ग दशम।
अन्तर्मुहूर्त में हुए युवा तन धातु रहित था दिव्योत्तम॥
निज अवधिज्ञान से जान लिया यह वैभव धर्मों का फल है।
चंचल भोगों में इसीलिये वह रहा वहाँ भी अविचल है॥

निर्ग्रंथ तपस्वी प्रियमित्र कुमार
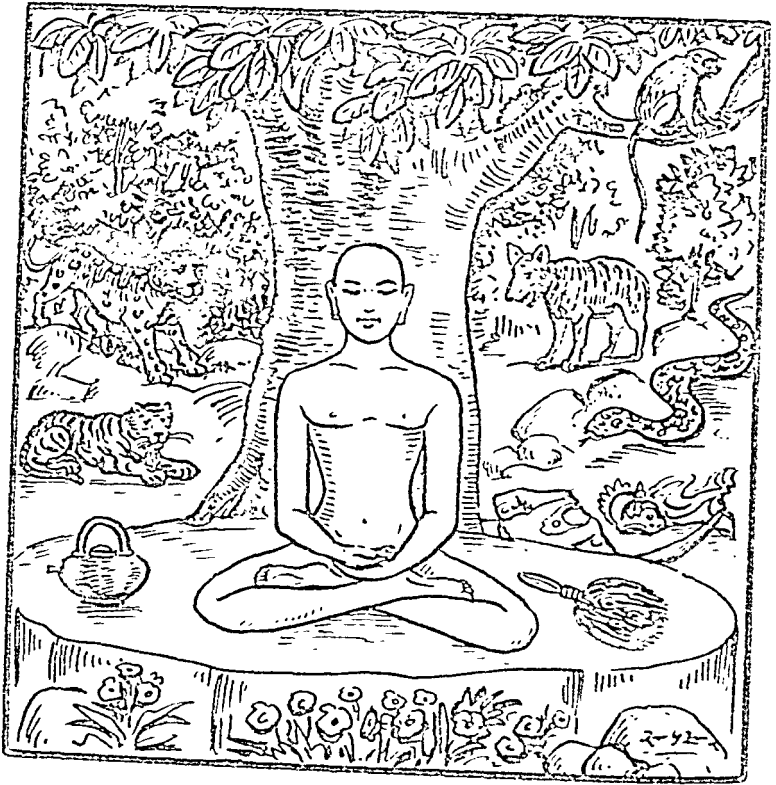
सुन कर जिनवर वाणी को वे उद्‌बोधन को प्राप्त हुए।
निर्ग्रन्थ तपस्वी बन कर निज अन्तश्चेतन में व्याप्त हुए॥
रत्नत्रय चारों आराधन पांचों व्रत समिति पालते थे।
त्रय गुप्ति सहित वे भाव द्रव्य आश्रव ही सतत टालते थे॥

निर्ग्रंथ मुनि प्रिय मित्र कुमार का जीव

युवराज नंद (सहस्रार स्वर्ग के देव) द्वारा दीक्षा ग्रहण

आयु पूर्ण कर चय कर आये छत्ताकार नगर में।
नन्दिवर्द्धनम् वीरवती दम्पति के पावन घर में॥
नंद नाम युवराज हुआ वह शुभ सम्यक्त्वी श्रावक।
प्रोष्ठिल मुनि से दीक्षा धारी तज विषयों की पावक॥

नन्द मुनि द्वारा षोडस कारण भावनाओं का चिन्तन
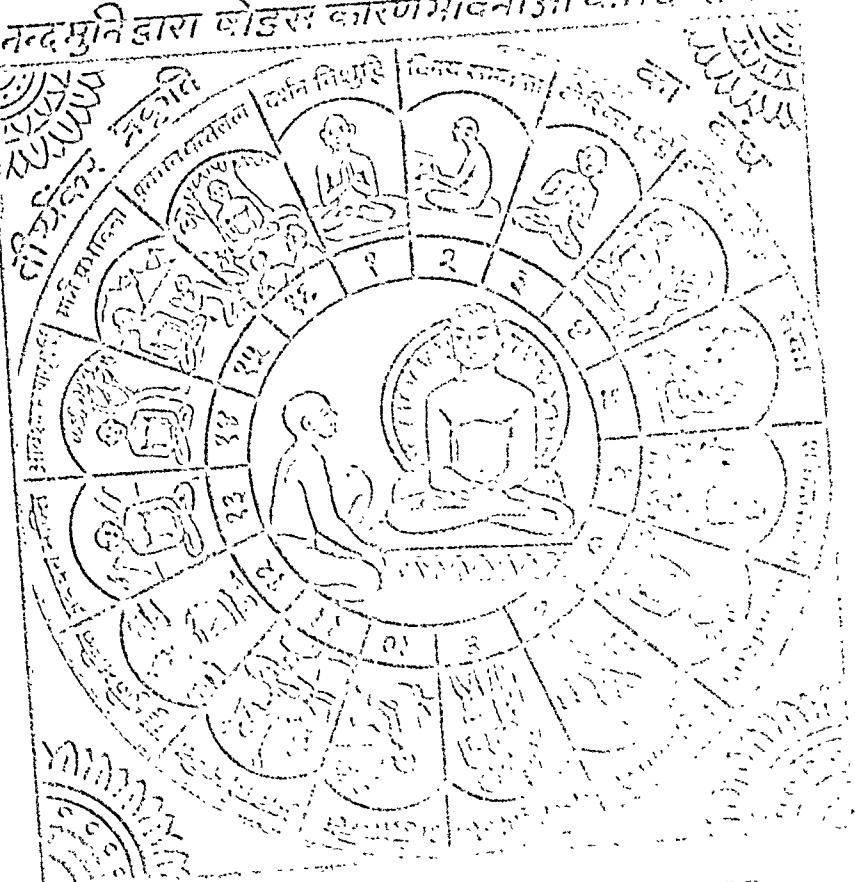
नंद मुनि का जीव तत्त्व चर्चा में तल्लीन

नंद मुनीश्वर ने तप करके अपनी काया त्यागी।
अच्युत नामक स्वर्ग लोक में इन्द्र हुऐ वड़भागी ॥
निरत तत्त्व चर्चा में रहकर काल असंख्य विताया।
भोगों में भी अनासक्त रह शुभ उपयोग लगाया ॥

महावीर गर्भावतरण
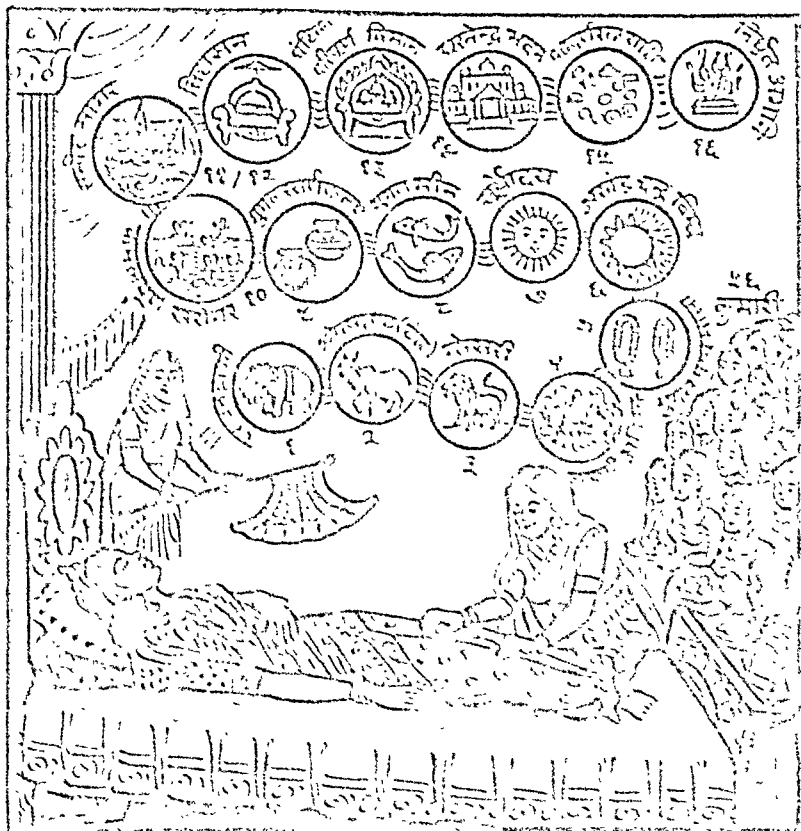
वीर शिशु को लेकर शची का सौर भवन से निर्गमन

गुप्त रूप से इन्द्राणी ने सौर-भवन में किया प्रवेश।
जननी को सुख निद्रा देकर शीघ्र उठाया बाल-दिनेश ॥
नके बदले मायामय सद्यः प्रसूत शिशु सुला दिया।
फिर वाहर आकर सुरपति की हर्षित वाहों में झुला दिया ॥

वीर प्रभु के जन्माभिषेक की शोभा-यात्रा

वीर शिशु को लेकर शची का सौर भवन से निर्गमन

गुप्त रूप से इन्द्राणी ने सौर-भवन में किया प्रवेश।
जननी को सुख निद्रा देकर शीघ्र उठाया बाल-दिनेश॥
उनके बदले मायामय सद्यः प्रसूत शिशु सुला दिया।
फिर बाहर आकर सुरपति की हर्षित बाहों में झुला दिया॥

वीर प्रभु के जन्माभिषेक की शोभा-यात्रा

नवजात महावीर श्री के जन्माभिषेक की मंगल वेला

जो क्षीर सिन्धु के नीर-कलश स्वर्णिम सुरगण भर-भर लाते ।
इन्द्रों द्वारा धारावाही वे शिशु शिर पर ढ़ारे जाते ॥
अभिपेक जिनेश्वर का होता दश शतक अष्ट कलशों द्वारा ।
संगीत नृत्य कौतूहल मय है दृश्य अलौकिक ही सारा ॥

अपूर्व अध्यात्म प्रभाव; सन्मति नामकर
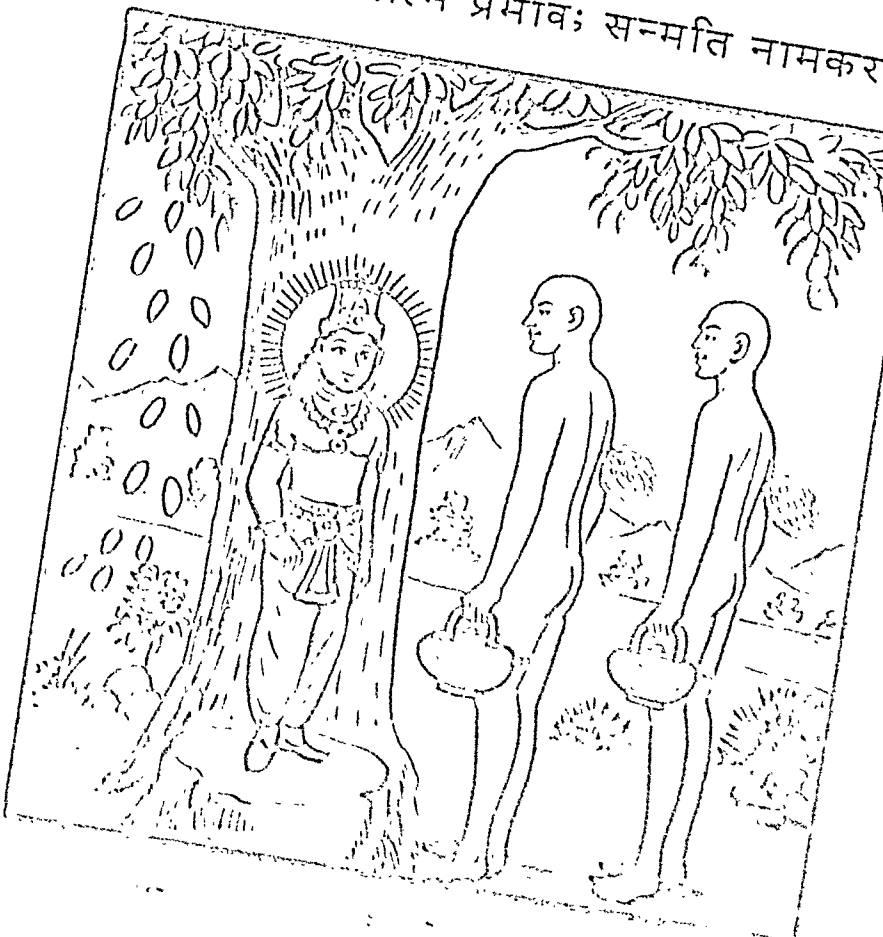
आमली (अन्डाडावरी) क्रीड़ा में रत राजकुमार वीर श्री की

संगम नामक एक देव तब शक्ति परीक्षा लेने आया।
महा भयंकर नाग रूप धर उसी वृक्ष पर जा लिपटाया॥
जिस पर खेल रहे थे सन्मति साथी संयुत अंड-डावरी।
उतरे फण पर निडर पैर रख देव विक्रिया हुई बावरी॥

थैयां छूने की क्रीड़ा में रत मायावी
संगमदेव और वर्द्धमान कुमार

महावीर श्री के मुष्टि प्रहार से मायावी देव परास्त
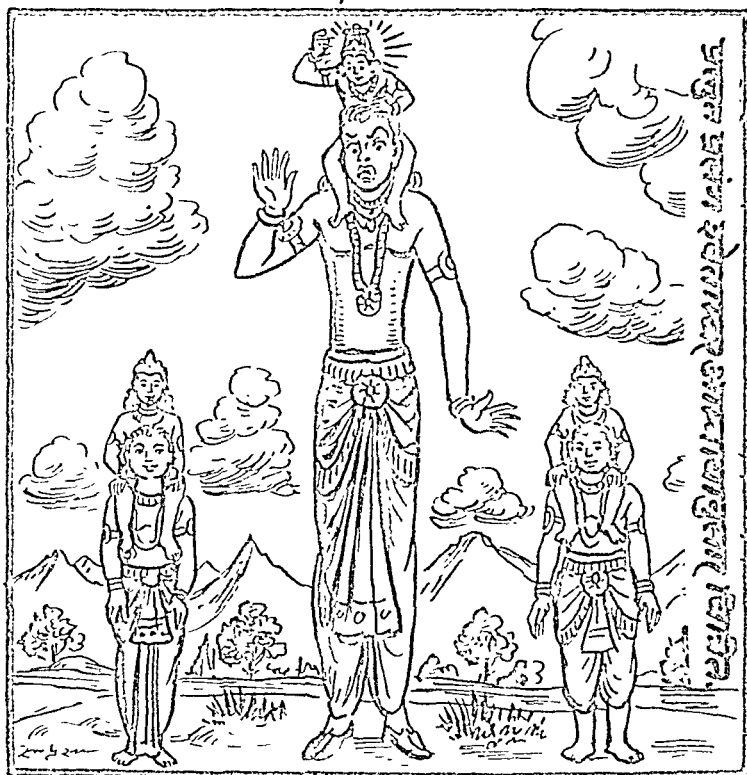
थी क्रीड़ा की शर्त विजेता को परास्त लादे कंधों पर।
तदनुसार चढ़ बैठे बालक वीर उसी संगम के ऊपर॥
किन्तु विक्रिया करके सुर ने अपना लंबा रूप बनाया।
सिर पर घूँसा मार वीर ने उसे यथावत् पुनः बनाया॥

आक्रामक निरंकुश हस्तीकोवश करने वाले "अतिवीर"
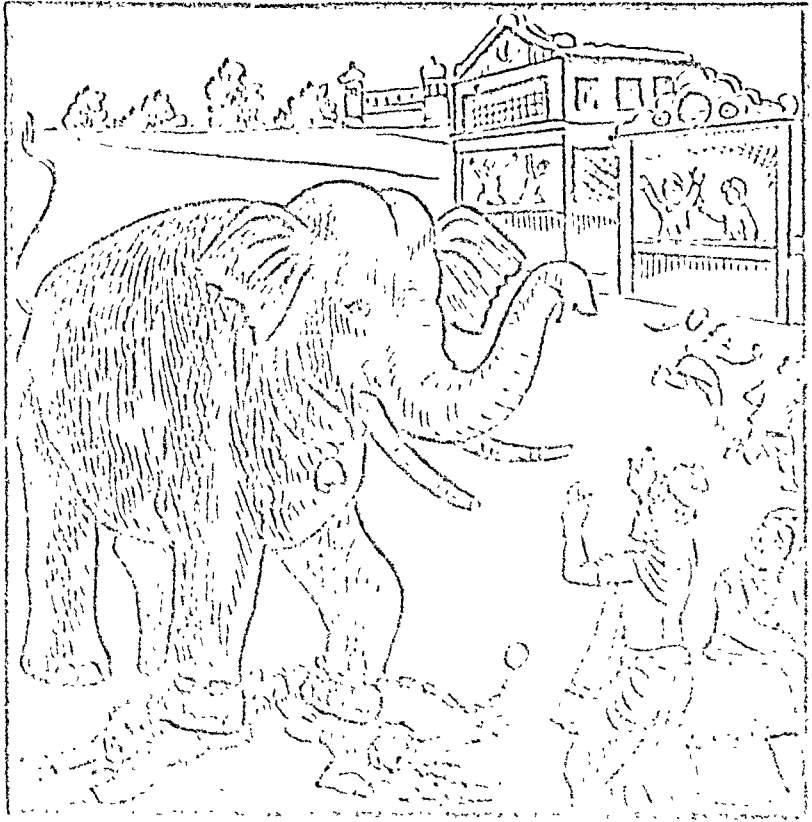
धर्म के ठेकेदारों द्वारा रोका गया हरिकेशी चाण्डाल

जब तरुण वीर वैरागी ने वन के प्रति कदम बढ़ाया था ।
तब जन समूह दर्शक गण का मानो सागर लहराया था ॥
इस जन समूह को चीर बढ़ा वह हरिकेषी चांडाल वहाँ ।
पर मना किया रोका उसको था उच्च वर्ग का जाल वहाँ ॥

पतितोद्धारक युवराज वर्द्धमान

स्याद्वाद सिद्धान्त की पृष्ठ भूमि पर
प्रतिष्ठित वैशाली का सत खंड भवन
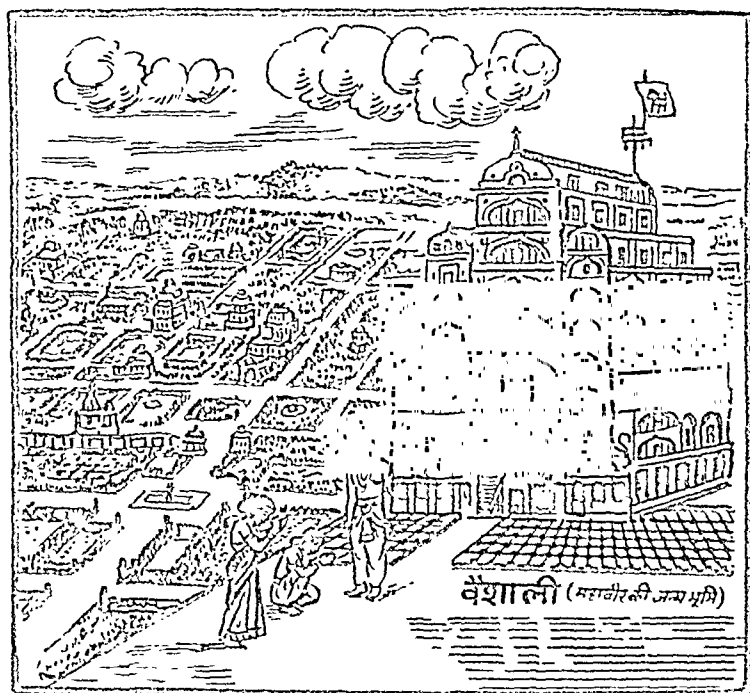
प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार चित्रित

अनेकान्त-रहस्य

निज सत खंडे राज-भवन की; चौथी मंजिल के सुकक्ष में ।
बैठे सोच रहे थे सन्मति, अपेक्षाओं के न्याय पक्ष में ।।

उसी भवन की पहली मंजिल में स्थित थीं त्रिशला देवी ।
किन्तु सातवीं पर पितु श्री थे, देव शास्त्र गुरु के पद सेवी ।।

समवयस्क ने आकर तब ही पूंछा पूजनीय माता जी ।
वर्द्धमान हैं कहां अवस्थित ? ऊपर बोली श्री त्रिशला जी ।।

बालक सत्वर चढा भवन की उसी सातवीं मंजिल ऊपर ।
पूछा नृप से हे जनकश्री ! वर्द्धमान जी गये कहां पर ? ।।

नीचे, उत्तर दिया उन्होंने बालक असमंजस में डोला ।
ऊपर नीचे की अपेक्षा समझ न पाया बालक भोला ।।

ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर आते-जाते समवयस्क ने ।
खोज न पाया वर्द्धमान को उस निराश ने समवयस्क ने ।।

किन्तु दूसरे दिन मिलने पर उसको सन्मति ने समझाया ।
ऊपर नीचे के आशय को भली भाँति मन में बैठाया ।।

माता जी की तो अपेक्षा मैं बिल्कुल ऊपर बैठा था ।
किन्तु सातवी की अपेक्षा तो मैं नीचे ही ठहरा था ।।

दोनों की वाणी सम्यक् थी किन्तु न थी निरपेक्ष सर्वथा ।
अतः भ्रमित तुम हुये क्योंकि मैं चौथी ही मंजिल में था ।।

इस घटना ने आगे चलकर खोज निकाला स्याद्वाद को ।
अनेकान्त सापेक्षवाद के दूर [illegible] विवाद को ।।

याज्ञिक क्रियाकाँडो के विरुद्ध वीर का सिंहनाद

धर्म नाम पर जीवित नर पशु वैदिक युग में होमे जाते ।
स्वार्थ लोभ वश पंडों द्वारा टिकटस्वर्ग के बांटे जाते ॥
हिंसा का यह नँगा तांडव धर्म नाम पर आत्म भ्रांति को ।
देखा तरुण किशोर वीर ने अतः जगाया लोक क्रांति को ॥

वैवाहिक प्रस्तावों को सविनय ठुकराते हुए वर्द्धमान

जितशत्रु कलिंगाधीश आदि निज सुता साथ में लाते थे ।
पर वर्द्धमान सारे परिणय-प्रस्तावों को ठुकराते थे ।।
चौवीस वर्ष के तरुण वीर थे मोहित मुक्ति मोहिनी पर ।
इसलिये मानते भी कैसे ? पितु-माता के समझाने पर ।।

विरागी तरुण वीर का महाभिनिष्क्रमण
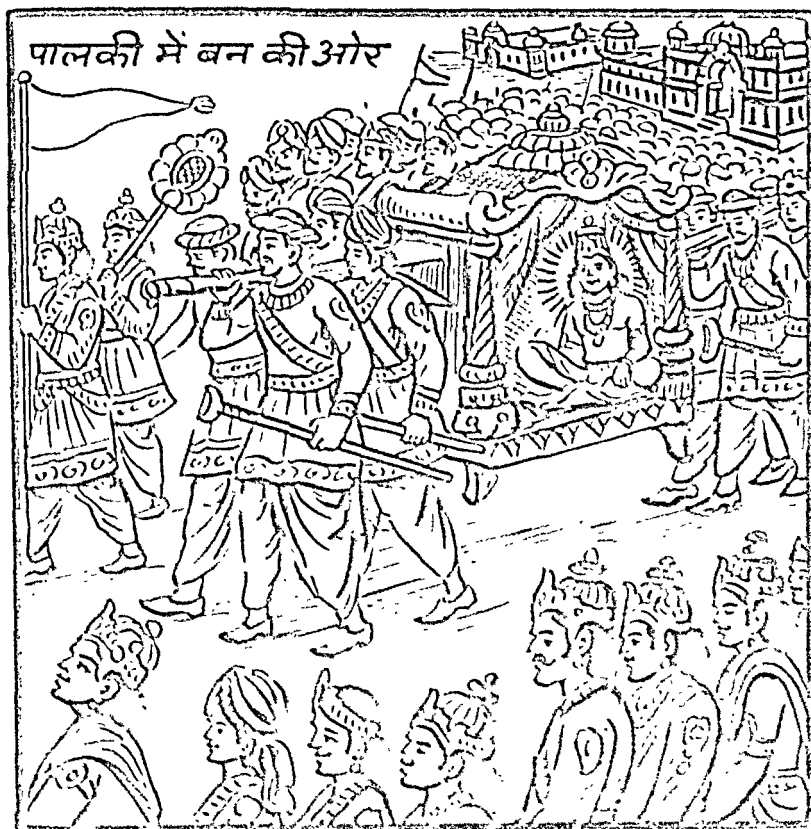
मगसिर कृष्णा दशमी के दिन राजपाट वैभव ठुकराकर ।
वीर विरागी ने तन मन से दिगम्बरत्व का दीप [illegible] ॥
ज्ञातृखंड नामक अरण्य की ओर चली चन्द्रप्रभा पालकी ।
मानव सुरगण द्वारा वाहित सन्मति मुनि वीर [illegible] ॥

दीक्षा कल्याणक पर लौकान्तिक देवों द्वारा अनुमोदना

ऊँनमः सिद्धेभ्यः पूर्वक केशों का लुंचन कर डाला ।
लौकान्तिक दीक्षा कल्याणक पर लाये अनुमोदन माला ।।
अध्रुव अशरण और अपावन देह भोग नश्वरता जग की ।
पर से भिन्न एक चेतन में संवर निर्जरता शिव-मग की ।।
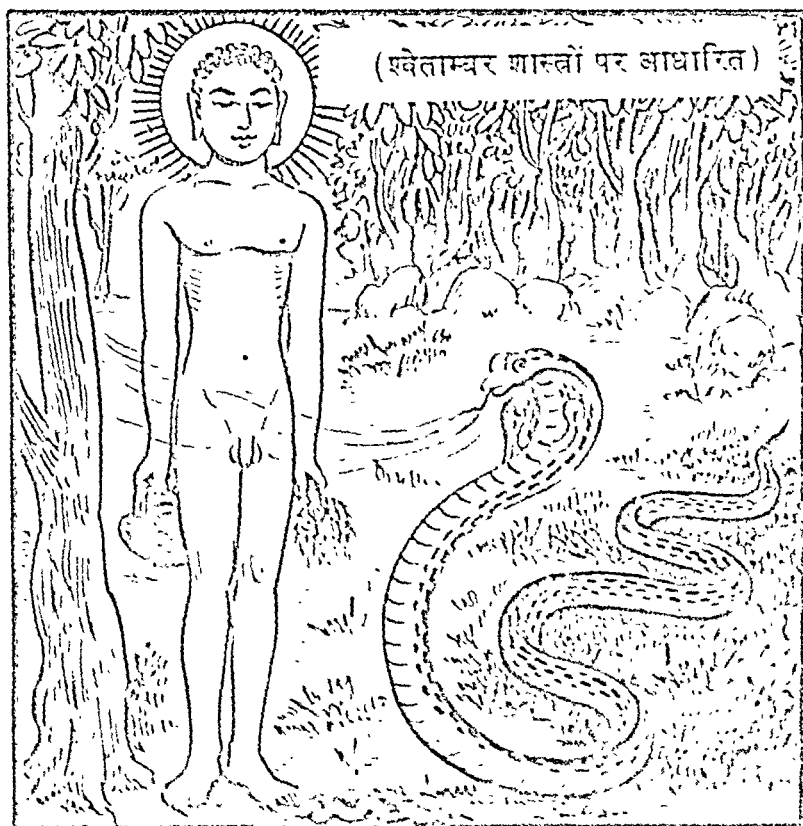
गो-पालक का आक्रोश-वीर प्रभू-की सहिष्णुता

सौंप गया वह पशु-गण अपने महावीर को चरवाहा था ।
आकर वापिस ले लूँगा मैं उसने ऐसा ही चाहा था ।।
किन्तु मौन ध्यानस्थ वीर को इन बातों से था क्या मतलब ।
अतः दुष्ट ने कर्ण युगल में कीला ठोक दिया ही था तब ।।
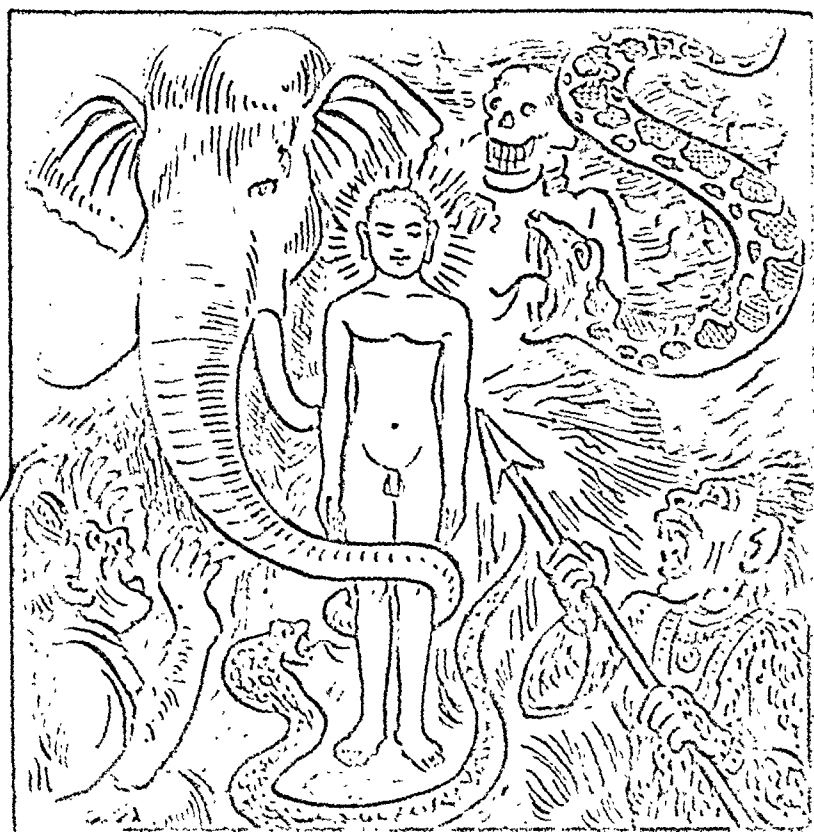
हिंसक वन्य पशुओं के वेश में रुद्रकृत उपसर्ग
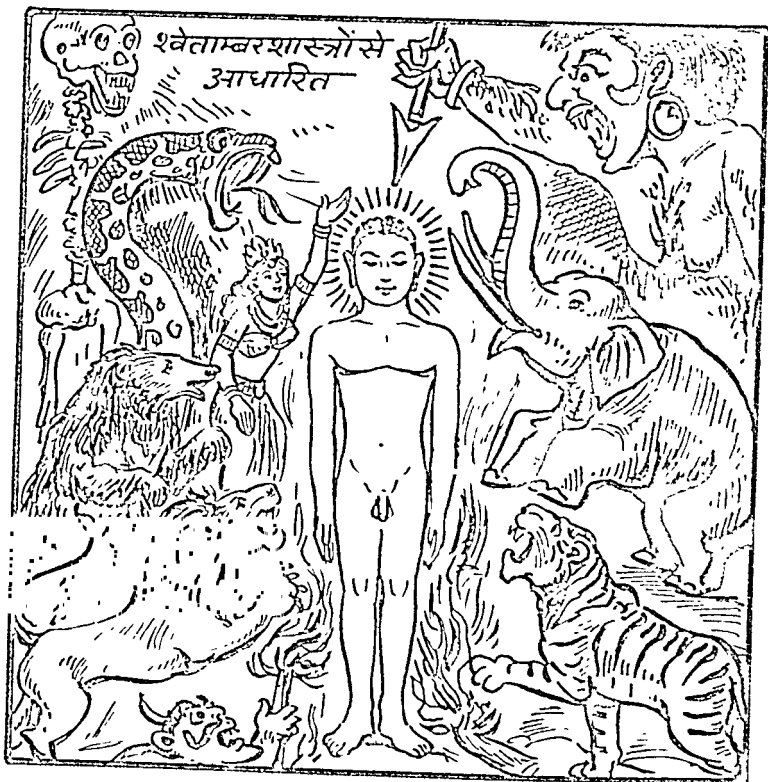
धीर वीर गंभीर सौम्य थी शान्त सहिष्णु वीर की मुद्रा।
आत्म शक्ति से हार गई थी क्षुद्र-रुद्र की माया रुद्रा॥
रुद्र रौद्र परिणामों द्वारा नरक आयु का पात्र होगया।
सु-विख्यात अतिवीर नाथ का तप कर स्वर्णिम गात्र होगया॥

काम विजेता वीतराग वर्द्धमान द्वारा पराजित अप्सराएँ
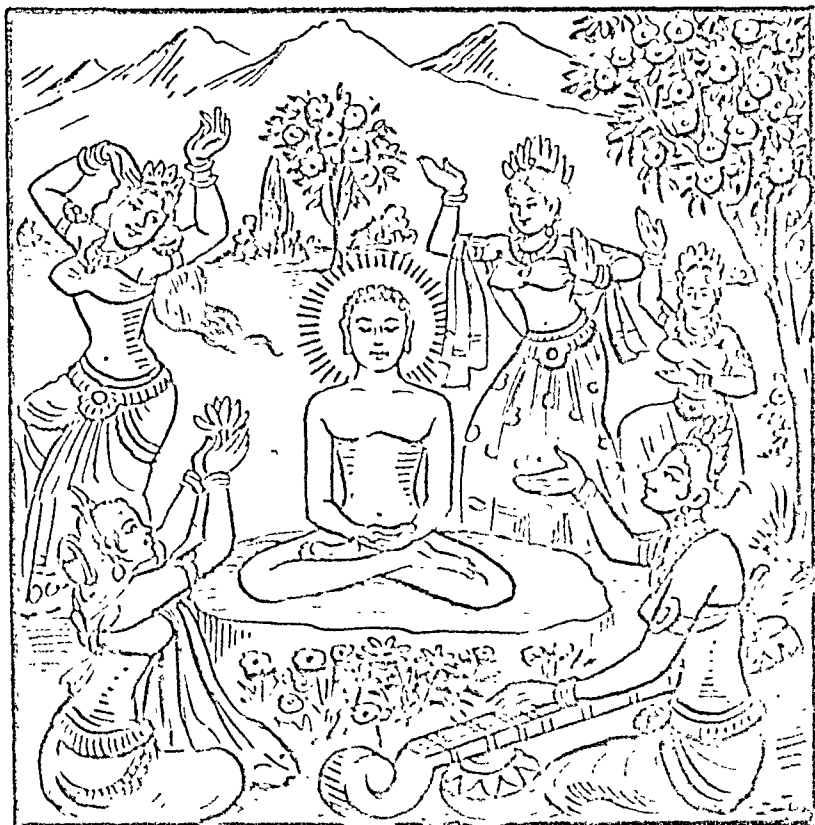
लोक विजेता महामल्ल सब काम-सुभट योधा से हारे ।
रंभा और तिलोत्तमाओं पर हरिहर ब्रह्मादिक भी वारे ॥
तप से विचलित करने प्रभु को अप्सराओं ने हाव-भाव से ।
खूब रिझाया महावीर को हार गईं पर म्लानभाव से ॥

सती चन्दना द्वारा वीर श्रमण को निरन्तराय आहार
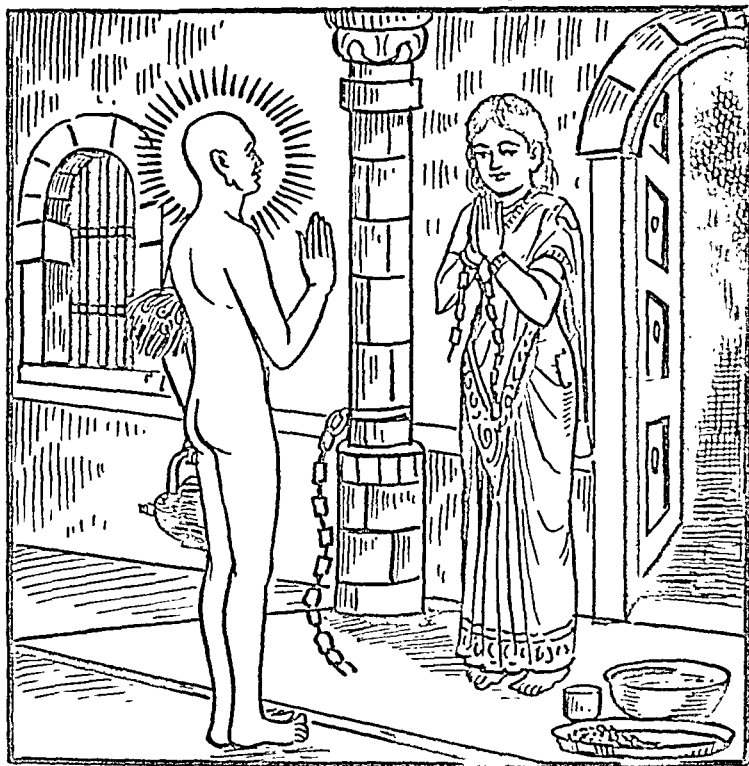
उस अभागिनी दासी ने जब महाश्रमण को पडगाहा था ।
पराधीनता ने स्वतंत्रता की देवी को अवगाहा था ।।
कोदों के दानें खीर बने फिर निरन्तराय आहार हुआ ।
पंचाश्चर्य चंदना का यों सचमुच पतितोद्धार हुआ ।।

वैभव की खोज में पुष्पक ज्योतिषी
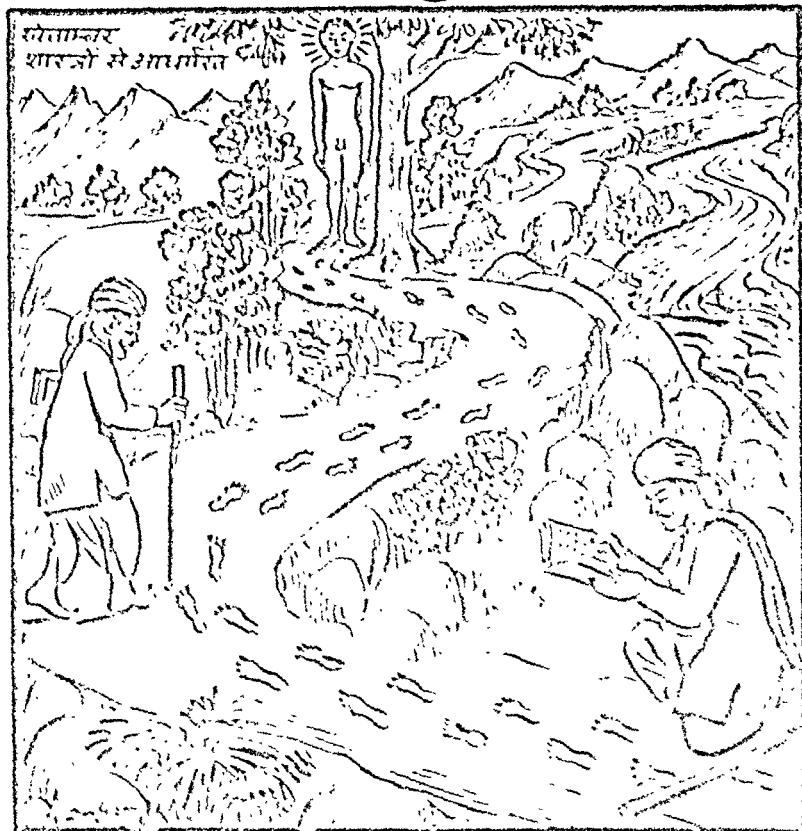
ज्योतिषी का अन्तर्द्वन्द्व

(प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार वर्णित)

(१)

तेजस्वी सम्राट् प्रतापी के ही चरण-चिन्ह हैं ये।
क्योंकि शास्त्र अनुसार ज्ञान से दिखते नहीं भिन्न हैं ये॥

(२)

शायद पथ को भूल भटकता होगा वह इस जंगल में।
अगर राह वतलादू मुझ को नव निधि मिलें इसी पल में॥

(३)

इसी लोभवश पथ चिह्नों को देख-देख वढ़ता जाता।
एक जगह वह तरु से आगे कोई चिह्न नहीं पाता॥

(४)

अतः वहीं पर रुक जाता है जहाँ वीर ध्यानस्थ खड़े।
आशा के विपरीत अकिंचन वस्त्र विहीन दिखाई पड़े॥

(५)

मेरा ज्योतिष ज्ञान गलत है अथवा झूठी पुस्तक है।
अतः क्रोध से लगा फाड़ने वह सामुद्रिक पुष्पक है॥

(६)

किन्तु श्रमण के मुख-मंडल.से फूट रहीं थीं जो किरणें।
उनकी आभा से चट्टानें सोना-चांदी लगी उगलने॥

महत्वाकाँक्षी पुष्पक ज्योतिषी का आत्म
श्वेताम्बर शास्त्रो से आधारित
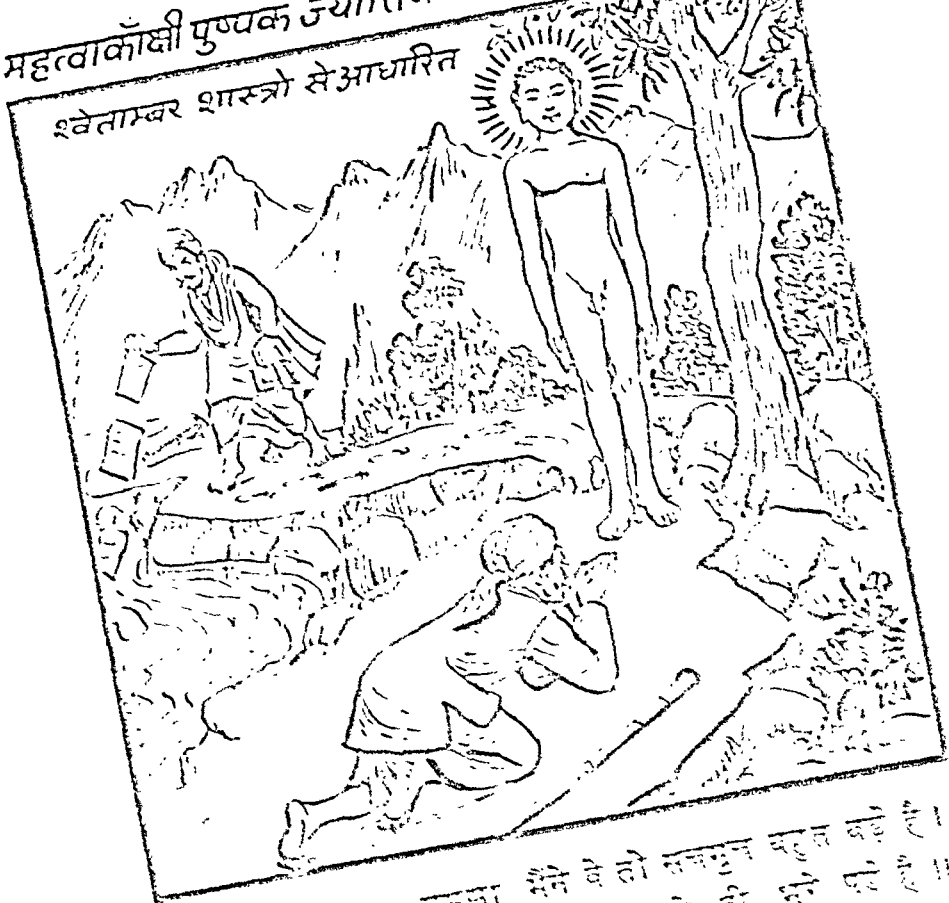
परमज्योति महावीरश्री को केवलज्ञान की प्राप्ति
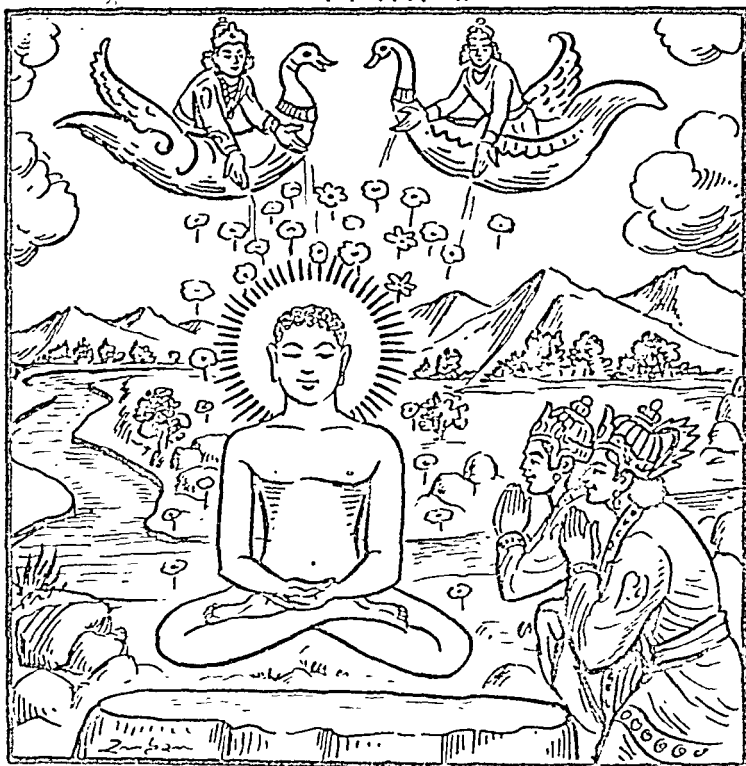
प्रकृति त्रिरेसठ कर्म घातिया किये नष्ट अरिहंत हुये ।
त्रैकालिक त्रैलोक्य विलोकी वे केवलि भगवंत हुये ।।
ऋजुकूला सरिता के तट पर महावीर सर्वज्ञ बने ।
बैसाखी शुक्ला दसमी को देवोत्सव भी हुये घने ।।

सर्वज्ञ तीर्थंकर भ० महावीर की धर्म सभा

भक्तामर द्वारा रचित सभा-मंडप वैभव युत समवसरण ।
तब गोलाकार प्रकोष्ट सहित विस्तृत सर्वोदय का कारण ॥
मानाङ्गण में चौपथ चौदिशि जिन प्रतिमा मानस्तम्भ खड़े ।
उनके आगे सरवर सुंदर पुनि प्रथम कोट में रत्न जड़े ॥

विराट् धर्म सभा विवरण

(१)

खाई को घेरे वन-उपवन पुनि दिशा चतुर्दिक ध्वजा पीठ।
फिर स्वर्णिम कोट दूसरा है द्वारों पर भवनों के किरीट॥

(२)

पुनि कल्प वृक्ष वन में मुनि सुर के वने हुए हैं सभा भवन।
है मणिमय कोट तृतीय रचा द्वारों पर कल्पों के सुर-गण॥

(३)

पुनि लता भवन स्तूप आदि श्री मंडप क्रमशः तने हुए।
है केन्द्र स्थल में गंधकुटी चौदिशा कक्ष हैं वने हुए॥

(४)

इन वारह् कक्षों में क्रमशः मुनि कल्पवासिनी आर्यिकाएँ।
ज्योतिप व्यन्तर भवनत्रिक की हैं समासीन देवाङ्गनाएँ॥

(५)

फिर देव भवन व्यन्तर ज्योतिप अरु कल्प वासि नर पशु के हैं।
ये सभी सभ्य श्रोता वनकर सन्मति वाणी को सुनते हैं॥

(६)

उस गंधकुटी कमलाशन पर हैं अन्तरीक्ष श्री वर्द्धमान।
हैं समवशरण के जीव सभी दिव्यध्वनि श्रवणातुर महान॥

इन्द्र की सूझ-बूझ

(१)

सर्वज्ञ केवली हुए वीर फिर भी दिव्यध्वनि नहीं खिरी ।
छियासठ दिन यद्यपि बीत गये फिर भी मौनी हैं वीरश्री ॥

(२)

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र शीघ्र इसका रहस्य जब जान चुका ।
तब वृद्ध विप्र का स्वांग बना गुरु कुलाचार्य के निकट रुका ॥

(३)

जो पंच शतक निज शिष्यों को वेदान्त पढ़ाया करता था ।
निज विद्या प्रतिभा का मिथ्या बस दंभ सदा ही भरता था ॥

(४)

उस युग ने लोहा माना था उसके अकाट्य शास्त्रार्थों का ।
था याज्ञिक क्रिया कांड वेत्ता ज्ञाता था नाना अर्थों का ॥

(५)

हो ज्ञान अल्प अथवा अतिशय पर यदि उसमें सम्यक्ता है ।
तो वन्दनीय वह देवों से वरना वह केवल मिथ्या है ॥

(६)

था इन्द्रभूति गौतम बहुश्रुत आचार्य किन्तु मिथ्यात्वी था ।
पर गणधर होने योग्य पात्र बस एक मात्र वह द्विज ही था ॥

(७)

जिनवर वाणी जो झेल सके उस युग का ऐसा योग्य पात्र ।
सौधर्म इन्द्र की प्रज्ञा में था इन्द्रभूति ही एक मात्र ॥

(८)

इसलिये वृद्ध का स्वांग बना वह इन्द्र विप्र को ले आया ।
उस समवशरण की ओर जहाँ था मानस्तंभ उन्नत भाया ॥

मानस्तम्भ दर्शन और अहंकारी इन्द्रभूति गौतम का दर्प दलन

फिर क्या था गौतम ज्ञानी का मिथ्या मद सारा चूर हुआ।
स्तम्भ देख स्तम्भित था मिथ्यात्व अंधेरा दूर हुआ ॥
सम्यक्त्व जगा निर्ग्रन्थ हुआ सन्मति का गणधर बन पहला।
श्रुत द्वादशांग में भाव गूँथ जिनवाणी अमृत रहा-पिला ॥

वीर हिमाचल ते निकसी गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है
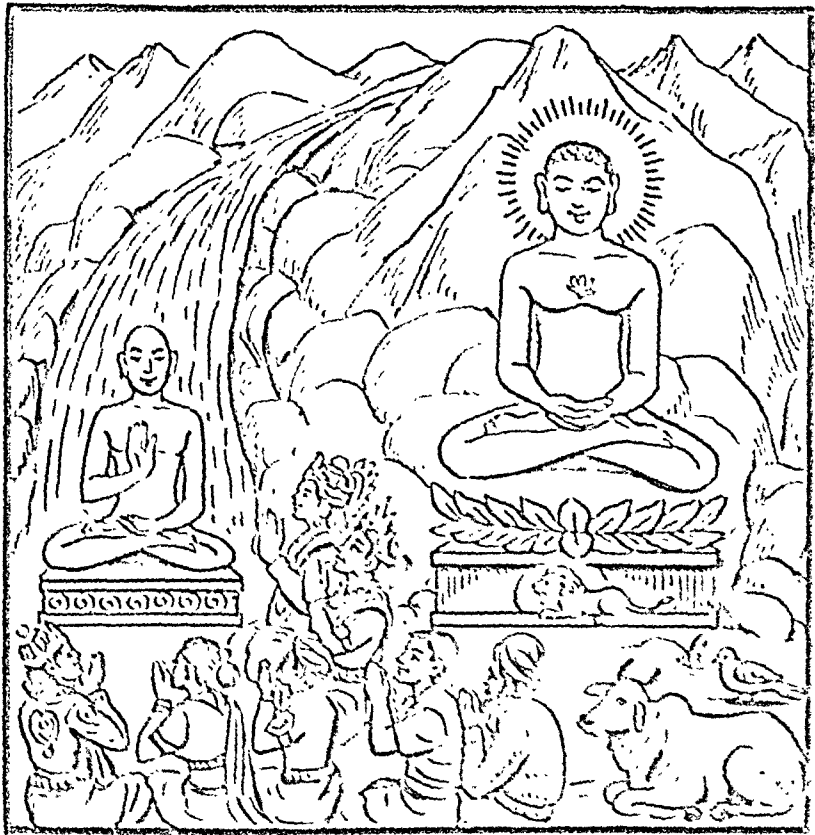
जिस दिवस दिव्य ध्वनि खिरी प्रथम यह श्रावण कृष्णा थी पावन ।
तिथि महावीर के शासन की प्रतिपदा मांगलिक मन-भावन ॥
विपुलाचल से दिया गया जो प्रथम देशना का संदेश ।
गौतम गणधर ने गूंथा है उसको ही [illegible]-निर्देश ।
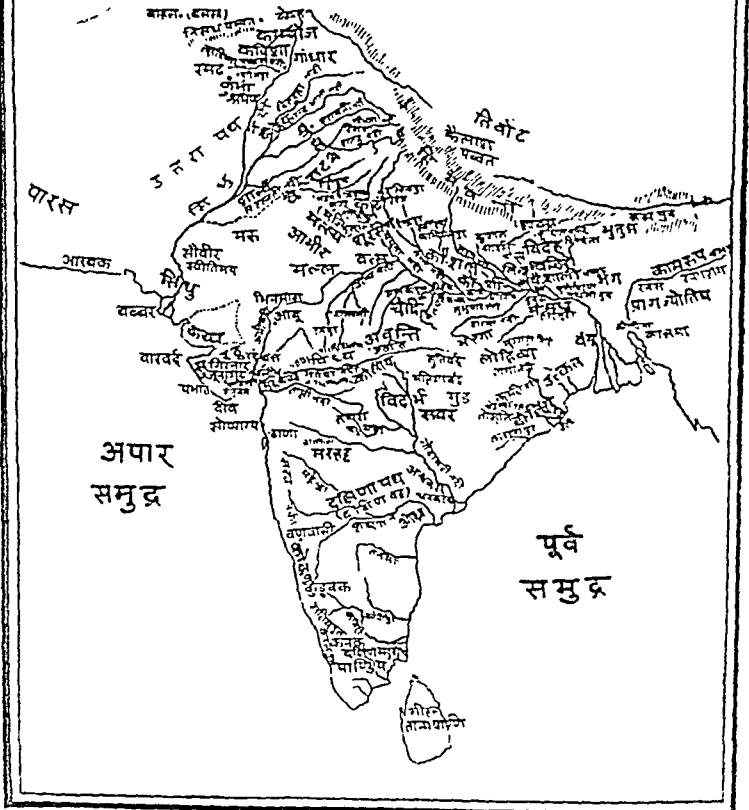
श्री वीर प्रभु की चरण-रज से
प्रभावित तत्कालीन भारत

महारानी चेलना द्वारा यशोधर मुनि का उपसर्ग निवारण

मुनि तन को हा ! छेद-छेद कर चींटी रुधिर पान करती थीं।
सम्यक्त्व शिरोमणि राज्ञि चेलना देख-देख आहें भरती थीं॥
किन्तु अंततः कीडी दल को बड़े यत्न से शीघ्र उतारा।
भौंचक्का सा रहा देखता श्रेणिक मुनि का गौरव सारा॥

दस्युराज अर्जुन माली द्वारा प्रपीडित नागरिक
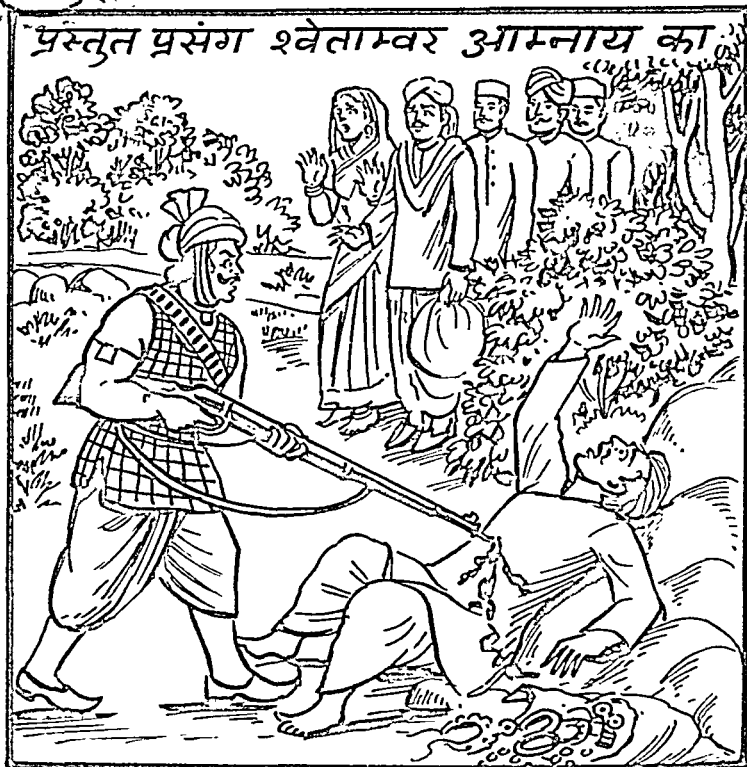
छह पुरुष एक महिला का वध करता था वह अर्जुनमाली ।
दस्युराज था महाक्रूरतम राजगृह नगरी हुई खाली ॥
उपादान था भव्य दस्यु का अतः निमित्त मिला कुछ ऐसा ।
हिंसक कर भी वीर तेज से उठा रहा जैसे का तैसा ॥

दस्युराज अर्जुन का आत्मनिर्वाण

जब वीर-वंदना हेतु सुदर्शन सेठ इसी पथ से आये ।
अर्जुनमाली उन पर झपटा क्षुधित सिंह सा मुँह बाये ।।
पर आत्मतेज से ठिठक गया चरणों में मस्तक झुका लिया ।
तब सेठ सुदर्शन ने उसको अपनी बाहों में उठा लिया ।।

पतित पातकी अर्जुन, महावीरश्री के पाद पद्मों में

प्रस्तुत प्रसंग श्वेताम्बर आम्नायानुसार चित्रित।

ले चले उसे वे वहाँ जहाँ पापी से पापी तिरते थे।
अधमों से अधमों के भी दिन जिस समवशरण में फिरते थे॥
हो गया हृदय का परिवर्तन सुनकर उपदेश अहिंसा का।
धारक भी वह होगया स्वयं तत्काल दिगम्बर मुद्रा का॥
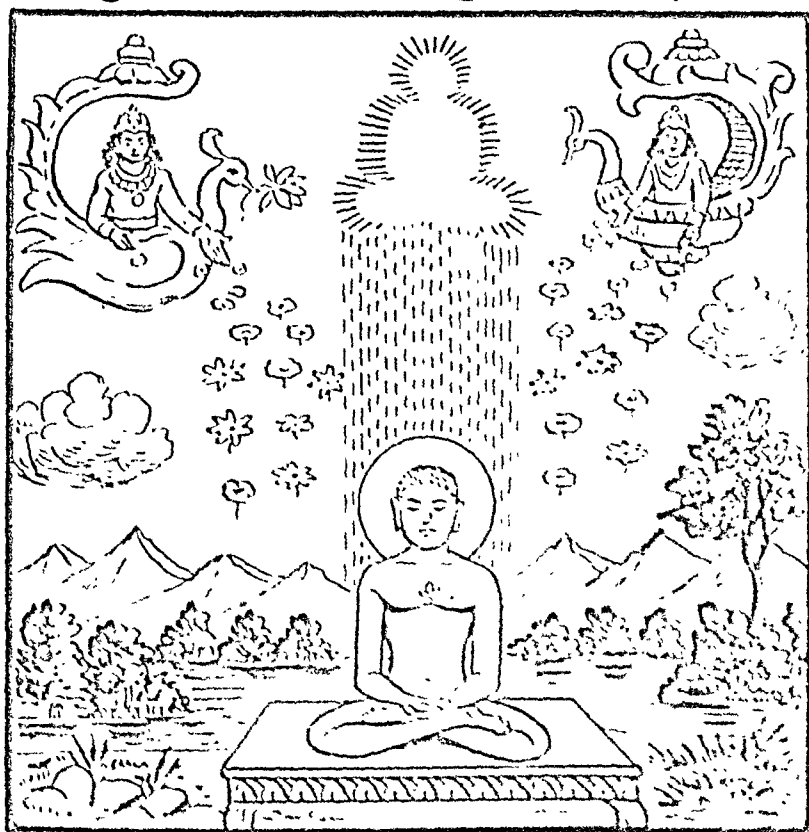
अग्निकु[illegible]मुकुटों की अग्नि द्वार अन्तिम संस्कार

अग्निकुमार देव नत मुकुटों द्वारा प्रकटित हुई कृशानु।
उसके द्वारा दग्ध हुए उनके कर्पूरी तन परमानु॥
रत्न-वृष्टि करके देवों ने पावापुर जगमगा दिया।
कार्तिक कृष्ण अमावस निशि का मोह महातम भगा दिया॥

पुष्प मित्र का जीव

भरत क्षेत्र श्वेतिक नगरी में, अग्निभूति ब्राह्मण थे।
प्रिया गौतमी के संग सुख से, करते जो कि रमण थे ॥
वह मारीचि इन्हीं के घर में, अग्निसह्य अवतरित हुआ।
जिसके द्वारा परिव्राजक का, मिथ्यामत स्फुरित हुआ ॥

खोटे तप के प्रभाव से

सनतकुमार स्वर्ग में पहुँचा, आयु पूर्ण कर तापस।
सात सागरों तक सुख भोगा, चख पुण्यों का मधुरस॥
इन्द्रिय जन्य सभी सुख नश्वर, पराधीन बन्धक हैं।
बाधा युक्त विषम फल दाता, दुख के उत्पादक हैं॥